परमगुरुशास्त्रविशारद-जैनाचार्यश्रीविजयधर्मसूरिभ्यो नमः ।

तेरापंथी-हितशिक्षा ।

लेखक,

मुनिराज विद्याविजय ।

प्रकाशक,

अभयचंद भगवान् गांधी ।

श्री "विद्या विजय" प्रिन्टिंग प्रेसमें शाह पुरुषोत्तमदास गीगाभाई पांचभायाने मुद्रित किया—भावनगर.

वीर सं० २४४२ । सन् १९१५ ।

परमगुरुश्रीविजयधर्मसूरिभ्यो नमः ।

किञ्चित् वक्तव्य.

'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना' संसारमें यह सामान्य लोकोक्ति समझी जाती है, परन्तु इसके गूढ रहस्यका जब पता लगाते हैं, तब मालूम होता है कि-यह उपर्युक्त मामूली लोकोक्तिका ही परिणाम है कि-संसारमें दिन प्रतिदिन नये २ पंथ-मजहब उत्पन्न होते ही रहते हैं, और नष्ट भी होते जाते हैं। संसारमें ऐसे अनेकों पदार्थ हैं, जिनको समझना, अल्पज्ञोंकी बुद्धिसे नहीं हो सकता। और इसी लिये तो हमारे ज्ञानी-ऋषि-महात्मा लोग कह गये हैं कि-'सर्वज्ञके वचनों-पर तुम विश्वास रक्खो'। हां इतनी आवश्यकीय बात है कि-हमारे आगम-हमारे सिद्धान्त सर्वज्ञभाषित है या कि नहीं? इसकी प्रथम हमें अवश्य प्रतीति होनी चाहिये। और इस प्रतीतिके होनेमें, उनके वचनोंकी सत्यताको समझना यही परम कारण कहा जा सकता है।

लेकिन ठीक है, जब मनुष्यसे अपनी मान्यता-पूजनाकी अभिलाषाका आवेग अमर्यादित हो जाता है, तब वह सर्वज्ञके वचनोंको झूठे दिखलानेमें किसी प्रकारका डर नहीं रखता। हमारे शुद्ध सनातन जैनधर्ममें, आजपर्यन्त जितने पंथ निकले हैं, उन सभीके उत्पादकोंके चरित्रोंको जब हम देखते हैं, तब हमें साफ २ जाहिर होता है कि-उपर्युक्त कारणसे ही उन्होंने नये २ ढांचे खडे किये हैं। और संसारके बहुतसे लोग कैसे भोले होते हैं, यह तो पाठक, अच्छी तरह जानते ही होंगे कि, उनको यदि यह कहा जाय कि-'देखो, सूईके छिद्रमेंसे शत हाथी निकल गये और जब सौवाँ हाथी निकलने लगा, तब वह पूछमें जाके अटक गया,' तो भी वे 'जी! हां!' ही करते

रहेंगे।" कहनेका तात्पर्य यह है कि–ऐसे भोले लोग उन लोगोंकी जालमें फँस जाँय, तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। अस्तु।

जिस पुस्तकके विषयमें यह 'किञ्चिद्वक्तव्य' लिखा जाता है, वह भी एक ऐसे ही पंथके विषयमें है। करीब दो वर्षोंके पहिले इस तेरापंथ मतके विषयमें मुझे विशेष अनुभव नहीं था, बल्कि इस पंथके मन्तव्योंके विशेष रूपसे जाननेकी इच्छा भी नहीं हुआ करती थी। परन्तु सौभाग्यवश, सं० १९७० के वैशाख महीनेमें जब, परमपूज्य प्रातःस्मरणीय गुरुवर्य शास्त्रविशारद–जैनाचार्य श्रीविजयधर्मसूरीश्वरजी महाराज तथा इतिहासतत्त्वमहोदधि उपाध्यायजी महाराज श्रीइन्द्रविजयजीकी पाली (मारवाड) में तेरापंथियोंके साथमें चर्चा हुई, और तेरापंथियोंने तेईस प्रश्न लिख करके दिये, तभीसे मुझे इस पंथके मन्तव्योंके जानने और इसके विषयमें कुछ न कुछ लिखते रहनेका सौभाग्य प्राप्त होता ही रहता है।

उन तेईस प्रश्नोंके उत्तरोंके साथमें, तेरापंथ–मतकी उत्पत्ति, उसके स्थूल स्थूल मन्तव्य (सिद्धान्त) तथा तेरापंथियोंसे पूछे हुए ७५ प्रश्न वगैरह संग्रहरूप 'तेरापंथ–मत समीक्षा' नामक पुस्तक, मैंने गत वर्षमें (सं० १९७० के चातुर्मासमें) शिवगंजमें लिखी थी। मुझे इस बातको प्रकट करते हुए संतोष होता है, कि–मेरी उस पुस्तककी दूसरी आवृत्तिके निकालनेका प्रकाशकको बहुत शीघ्र समय प्राप्त हुआ। साथ मुझे इस बातका अफसोस भी है कि–उस पुस्तकमें मेरे पूछे हुए ७५ प्रश्नोंके उत्तर, आजतक किसी भी तेरापंथीने प्रकाशित नहीं किये।

यद्यपि मैंने, 'तेरापंथ–मत समीक्षा' में तेरापंथियोंके मन्तव्योंके नाम मात्र प्रकाशित किये थे, परन्तु उनका विस्तारसे जवाब नहीं

लिख सका था। इस लिये उनके लिखनेकी बहुत आवश्यकता समझता था। क्योंकि–आजकलके मनुष्योंको जब तक शास्त्र प्रमाण और युक्तियोंके द्वारा किसी भी विषयको न समझाया जाय, तब तक उनके अन्तःकरणोंमें इसका असर नहीं पहुँच सकता है। और तेरापंथियोंने अपनी पुस्तकोंमें भद्रिक जीवोंके फँसानेके लिये ऐसे २ दृष्टान्त और कुयुक्तिया दी हैं, जिनको पढ करके, सामान्य बुद्धि वाला मनुष्य तो एक दफे 'इदं किम्' इस विचारमें अवश्य ही पड सकता है।

तेरापंथियोंके सभी सिद्धान्त ऐसे है, जिनके विषयमें बहुत कुछ लिखनेकी आवश्यकता है। सिद्धान्त ही नहीं, उनके आचारो पर भी लंबी चौडी आलोचनाओंके करनेकी जरूरत है। क्योंकि–संसारमें ऐसा कोई मजहब नहीं होगा।कि–जो साधु, और साध्वियोंको आपसमें घनिष्ट संबधके रखनेका तेरापंथियोंकी तरह प्रतिपादन करता हो। यही क्यों ? तेरापंथी साधु और साध्वियाँ एक ही मकानमें रहनेमें भी पाप नहीं समझते। हाँ, एक आगनमें नहीं रहनेका अवश्य जाहिर करते है। देखिये, इसके लिये, कुछ दिन पहिले उदयपुरके मी० कावडियाजीने, अपने निकाले हुए इश्तिहारमें लिखा है:—

"रात्रीको छोटीसे छोटी लडकी भी साधुओंके निवासस्थानें (एक आंगन) में नहीं रह सक्ती"

इससे स्पष्ट जाहिर होता है कि एक मकानमें अवश्य रहती है। इसके सिवाय और भी बहुतसे आचार उनके ऐसे है, जो कि शास्त्रसे–व्यवहारसे सभी प्रकारसे सर्वथा खिलाफ है।

तेरापंथियोंके जितने सिद्धान्त शास्त्र विरुद्ध हैं, उनमें 'दया–दानका निषेध' 'मूर्तिपूजाका' निषेध ये मुख्य हैं। इस पुस्तकमें मैंने इन

दोनों विषयोपर लिखनेका इरादा किया था, परन्तु खेद है कि–अवान्तरमे अन्य कार्योंके उपस्थित हो जानेसे और इधर चातुर्मास की पूर्णाहूति भी समीप ही आजानेसे 'मूर्तिपूजा' के विषय पर मुझसे कुछ भी न लिखा गया। मैं उस दिन अपनी आत्माको विशेष धन्य समझूंगा, जिस दिन 'मूर्तिपूजा' और तेरापंथियोंके अन्य मन्तव्यों पर एक और पुस्तक लिख कर पाठकोंके कर कमलोंमे समर्पित करूगा।

इस पुस्तकमें मैने खास करके तो दया–दानके विषयमे ही विशेष लिखनेका प्रयत्न किया है। इसके साथमें, सक्षेपसे इस (तेरापंथ) मतके उत्पादक 'भीखमजीके जीवन' और 'मुहपत्ती बांधना शास्त्र विरुद्ध है कि नहीं, इनकी आलोचनाएं भी आवश्यकीय समझ कर की गई हैं।

इस पुस्तकके लिखनेमें, जहाँ तक बना है मैंने 'सत्यं ब्रूयात् प्रिय ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्' इस नियमको स्मरणमें रक्खा है, तिस पर भी कदाचित् कहीं अनुचित शब्द लिखा गया हो, तो इसके लिये मुझको दोषित न गिन कर, तेरापंथियोकी पुस्तकें 'भ्रमविध्वस', 'तेरापंथी श्रावकोंका सामायक पडिक्कमणा अर्थ सहित', 'तेरापंथीकृत देवगुरु धर्मनी ओलखाण', 'जैनज्ञानसारसंग्रह', 'जिनज्ञानदर्पण', 'श्रीभीखमजी स्वामिको चरित्र रास' तथा 'ज्ञान प्रकाश' (प्रश्नोत्तर) वगैरहको ही गिनना चाहिये, जिनको पढ करके मैंने यह पुस्तक लिखी है। उनकी पुस्तकोंमे ऐसे असभ्य और कटु शब्द लिखे हैं, जिनको देख रागसद्भावसे कहीं अनुचित शब्द निकल जाना सभवित है।

इस पुस्तकके लिखनेमें अगर मैं कुछ भी प्रशस्त प्रयत्न कर सका हूँ और पाठकोंके संतोषकारक युक्तियाँ दे सका हूँ, तो वह, मेरे पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय गुरुवर्यकी कृपाका–

अनुग्रहका–उपदेशका ही फल है। क्योंकि मेरेमे यह शक्ति ही नहीं है कि–मै किसी प्रकार पाठकोंको सन्तोष दे सकूं। और इस पुस्तकमे जो जो त्रुटियाँ देखी जॉय, वे मेरी ही अज्ञानताके कारण समझनी चाहिये।

मै यहाँपर इतिहास तत्वमहोदधि पूज्यपाद उपाध्यायजी महाराज श्रीइन्द्रविजयजी, न्यायतीर्थ न्यायविशारद प्रवर्तकजी महाराज श्री मंगलविजयजी, तथा न्यायतीर्थ–न्यायविशारद मुनिवर्य न्यायविजयजी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ कि, जिन्होने मुझे इस पुस्तकके लिखनेमें समस्त प्रकारकी सहायता दी है।

अन्तमे, इस पुस्तकसे प्यारे पाठक अवश्य लाभ उठावे, और दया–दानके परम तत्त्वको समझे। वस इसमें ही मैं अपने प्रयत्नकी सफलता चाहता हुआ, इस वक्तव्यको समाप्त करता हूँ।

उदयपुर–मेवाड.
कार्तिकी पुर्णिमा वीर सं० २४४२

विद्याविजय.

॥ अर्हम् ॥

परमगुरुश्रीविजयधर्मसूरिभ्यो नमः ।

तेरापंथी-हितशिक्षा ।

शास्त्रकारोंका यह कथन सर्वथा सत्य ही है कि-'रागदृष्टि, मनुष्यमें रहे हुए हजारो दोषोंमेंसे एकको भी नहीं देख सकती ।' लेकिन बुद्धिमान लोग ऐसे दृष्टिरागियोंके आचरणोंपर बडी हँसी किया करते हैं । जिस धर्ममें, जिस मजहबमें, जिस पंथमें अथवा यों कहिये कि जिस समाजमें शास्त्रविरुद्ध और व्यवहारविरुद्ध आचरण हो रहे हों, संसारके समस्त सभ्यमनुष्य जिसके प्रति घृणा दिखाते हों, जिस पंथके मन्तव्योंको सुनते ही लोग छीं छीं करते हों, और साथ ही साथ जिस पंथके उपदेशक (साधु) के हृदयमें दयाकी अंशमें भी मात्रा न रही हो, उस पंथको-मजहबको मोक्षमें ले जानेवाला, समझनेवाले बुद्धिमानों (!) की बुद्धिका क्या परिचय कराया जाय ? । संसारमें हम जितने धर्म या समाजोंको देखते हैं, उनमेंसे किसी धर्म या समाजमें यह सिद्धान्त नहीं प्रतिपादित किया गया है कि 'जीवको बचानेमें पाप लगता है ।' यदि इस सिद्धान्तवाला संसारमें कोई मत है तो वह 'तेरापंथ'

मत ही है। और इसीसे इस पंथको कोई भी मनुष्य मानुषीपंथ कहनेका साहस नही कर सकेगा। क्योंकि मनुष्य प्रतिपादित 'कोई' भी धर्म ऐसा नहीं है कि–जिसमें सर्वथा मनुष्यके हृदयको निष्ठुर–निर्दयी अथवा पाषाणके नातेदार बनानेका प्रयत्न किया गया हो। जो मनुष्य हमेशा मांस खानेवाला है, और जो कसाई हमेशा जीवोंका वध करता है, वह भी यदि रास्तेमें, दो जीवोंको लडते हुए अथवा प्रबलजीव, दुर्बलजीवको मारते हुए देखेगा, तो उनको, छुडानेका अवश्य ही प्रयत्न करेगा। परन्तु तेरापंथी नामधारी ऐसे जीवोंको कभी नही छुडावेंगे।

हमें इस बातसे अधिक खेद है कि–ये लोग पवित्रजैनधर्मको कलंकित कर रहे हैं, लेकिन हम इसको 'जैनी' नहीं कह सकते। क्योंकि जैनधर्मका तो मुख्य सिद्धान्त ही जीव दया–जीवरक्षा है, और इन्होंने जीवदयाको तो बिलकुल उठा ही दिया है। फिर वे क्योंकर जैनी होने के दावेको निभा सकते है?।

क्या यह जैनधर्मका कभी सिद्धान्त हो सकता है कि–'भूखे-प्यासेको जिमाने, कबूतरादि पक्षियोंको दाने डालने और दानशालाके करवाने, इत्यादि अनुकंपाके कार्योंमे एकान्त पाप होता है?। क्या यह जैनधर्मका सिद्धान्त हो सकता है कि–बिल्ली चूहे (उंदर) को और कुत्ता बिल्लीको पकडता हो तो उसको छुडानेसे पाप लगे?। क्या यह जैनधर्मका सिद्धान्त हो सकता है कि–कोई मनुष्य किसी जीवको मारता हो, तो उसको द्रव्या-दिक देकरके छुडानेमें पाप लगता है?। और क्या यह जैन-धर्मका सिद्धान्त हो सकता है कि–गरीब-दुःखी–दुर्बलजीवको अनुकंपा दान देनेमें एकान्त पाप लगता है?।

इत्यादि जैनधर्मके सिद्धान्तोंसे बिलकुल विपरीत सिद्धान्तों-को मानने वाले यदि 'जैनी' होनेका दावा करते हों, तो उनका यह वैसा ही दावा है, जैसे कि--एक कसाई, ब्राह्मण होनेका दावा करे।

तेरापंथी, जैनी नहीं हैं, इसमें एक और भी प्रमाण है। जैनोंके देव, चौबीस तीर्थंकर हैं, तेरापंथियोंके देव, उस पंथके उत्पादक भीखम हैं। जैनोंके गुरु, पंचमहाव्रतको पालने वाले, कंचन-कामनीके सर्वथा त्यागी, उष्णजलको पीनेवाले, निर्दोष आहारको लेनेवाले और महावीरस्वामीके तीर्थमें गुरुपरंपरासे चले आनेवाले साधु-मुनिराज हैं। तेरापंथियोंके गुरु, साध्वियाँ-श्राविकाओंको रातके दस २ बजे तक पासमें ही बैठा रखनेवाले, एक एक दिवसके अंतरसे नियत किये हुए घरोंमेंसे मरजी मूजब माल उठानेवाले, साध्वियोंके पास आहारपानी मंगवानेवाले, कच्चे पानीको पीनेवाले, (एक घडे पानीमें जरासी राख डाल दी, इससे पक्का नहीं कहा जा सकता, और ऐसे राखके पानीके पीनेका अधिकार भी नहीं है, इसलिये हम उसको कच्चापानी ही कहते हैं) मूँह पर दिनभर मुहपत्ती बांध रखने वाले, तेरापंथी साधु ही हैं। जैनोंका धर्म, महावीरस्वामीका प्ररूपित है, और तेरापंथियोंका धर्म, भीखमका उत्पादित है।

अब बतावें पाठक, तेरापंथियोंको जैनी कहना, कितनी भारी भूल है।

ऊपर कहे हुए संसार--व्यवहारको छेदनकरने वाले, हृदयको निर्दय बनानेवाले बहुतसे सिद्धान्तोंका नामोल्लेख 'तेरापंथ--मत-समीक्षा' में किया गया है। अब इस पुस्तकमें इनके

माने हुए स्थूलस्थूल सिद्धान्तोंका, जैनसूत्रों और युक्तियों के साथ खडन आगे जाकर किया जायगा। लेकिन इसके पहिले एक और बात कह देना समुचित होगा।

नीतिकारोंका यह कथन है कि—'पुरुषविश्वासे वचनविश्वासः' सिवाय पुरुषविश्वासके होनेके, वचनका विश्वास नहीं हो सकता। अतएव पहिले इस तेरापंथ-मतके उत्पादक भीखुनजीके जीवन-चरित्रका अवलोकन करें, कि जिससे पाठकोंको यह तो विदित हो जाय कि—इस पंथके उत्पादककी ज्ञानपूंजी कितनी थी?।

भीखम चरित्रका अवलोकन

भीखम (भीखुन) चारित्र, तेरापंथियोंके छपवाए हुए कई पुस्तकोंमें छपा है। इस परसे मालूम होता है कि—इसका जन्म मारवाडके कंटालिया नामक किसी ग्राममें, सं. १७८३ में हुआ था। इसके पिताका नाम बलुजी था, और माताका नाम दीपाई। सं. १८०८ में इसने दूंढक साधु रघनाथजीके पास दीक्षा ली। सारे चरित्रको हम पढ गये, परन्तु कहीं भी यह नहीं देखा गया कि इन्होंने संस्कृत—प्राकृत या भाषाका भी कुछ अभ्यास किया हो। इतना ही नहीं, इसकी बनाई हुई टूटी—फूटी भाषाकी कविताओंके सिवाय आज एक भी छोटी बडी उपयोगी पुस्तक प्राप्त नहीं होती। इससे क्या समझना चाहिये?। जैसे आजकल मारवाड—मेवाडमें

---

१ सं. १९५७ में शाह खेतसी जीवराजने 'तेरापंथी श्रावकोंका नाना-यकपडिकमणा अर्थ सहित' नामक जो पुस्तक निर्णयसागर प्रेसमें छपवाई है, उससे यह अवलोकन किया गया है। इस चरित्रको रिख वेणीदासने वगडी में, वि. सं. १८६० फाल्गुन वदि १३ गुरुवारके दिन बनाया था।

तेरापंथी और ढूंढिये विना पढे लिखे अज्ञानियो को मूंड लेते है, वैसे ये महात्मा (!) भी रागको नहीं समझ करके ही विरागी वन बैठ हों, ऐसे ही प्रतीत होता है।

ऊपर दिये हुए सवतोंसे मालूम होता है कि—भीखमजीने पचीस-वर्षकी उम्रमें ढूंढकमतका पल्ला पकडा था। इतनी उम्रमें भी आप-की बुद्धिका तेज कितना लंबा—चौडा था, इसके लिये एक ही प्रमाण देख लीजिये। भीखुचरित्रकी प्रथम टालकी ८ वीं कडीमें लिखा है:—

'गुरु किया रुगनाथजीरे लाल, पूरी ओलख्यो नहीं आचारे'

वढे आश्चर्यकी वात है कि—पचीसवर्षकी उम्रमें दीक्षा ली, फिर भी आप आचारकी परीक्षा नहीं कर सके। वस, यही आपकी बुद्धिका परिचय है। यदि इसमे थोडीसी भी समझनेकी शक्ति होती तो ढूंढकपंथमें दीक्षा लेता ही क्यों ?। अस्तु, ऐसे अल्पज्ञ होनेपर भी चरित्रके लेखक तो इसको 'तीर्थंकर' की तरह मानते हैं, यह भी अन्धश्रद्धाका नमूना ही नहीं तो और क्या ?।

चरित्रका लेखक भी अपनेको एक महाज्ञानी समझकरके ही चरित्रको लिखने बैठा है। यदि ऐसा न होता तो चरित्रकी शुरुआतमें:—

'किहां उदना किहां जनमिया, परभव-पहोता किण ठाम।
धुरसुं उत्पत्ति त्यारी कहुं, ते सुणजो शुद्धपरिणाम' ॥५॥

आश्चर्यकी वात है कि—'चारित्रनायक परभवमें कहा पहूंचे' इसकाभी ज्ञान लेखकको हो गया ?। कितनी अंधाधुंधी ?। लेकिन ठीक है, तेरापंथ-मतके उत्पादक भीखमजीने, परमात्मा महावीर

देवको ही चूका कहनेका जब दुःसाहस किया, तब भला ये क्यों कमी रक्खें ? साथ साथ, एक और बातको समझ लीजिये ।

भीखुचरित्रके लेखकने, भीखमजीके जन्मादि प्रसंगोंको तीर्थंकरके कल्याणकोंकी तरह कल्याणक लिखे हैं । जैसे जन्मके प्रसंगमें लिखा है:—

'तीखीतिथि तेरस सुणीरे लाल, जन्मकल्याणिक थायरे' । सो० ॥५॥

ऐसे और प्रसंगोंमें भी । अब यहाँ विचारनेकी बात है कि-कल्याणक होते है किसके ? । कल्याणक होते हैं तीर्थंकरोंके । भीखमजी जैसे अल्पज्ञोंके नहीं । और जिसके कल्याणक होते है, उसको तो गर्भमेंसे ही तीन ज्ञान (मति-श्रुत-अवधि) होते है । क्या भीखमजी, जब उनकी माताकी कुक्षिमें आए, तबसे उनके तीन ज्ञान थे ? । और यदि उसको तीनज्ञान होते, तो विचारा ढूंढक-साधु होता ही क्यो ? एवं पीछेसे वहाँसे भागकर एक नया ढाँचा खडा करता ही क्यों ? ।

और भी एक बात है । जिनके कल्याणक होते हैं, उनके (तीर्थंकरोंके) जन्मसे ही ये चार अतिशय होते हैं:—

' तेषां च देहोऽद्भुतरूपगन्धो
निरामयः स्वेदमलोज्झितश्च ।
श्वासोऽब्जगन्धो रुधिरामिषं तु
गोक्षीरधाराधवलं ह्यविस्रम् ॥ ५६ ॥
आहारनीहारविधिस्त्वदृश्य-
श्चत्वार एतेऽतिशयाः सहोत्थाः ।'

(अभिधानचिन्तामणौ)

अर्थात्–१ तीर्थंकरोंका अद्भुतरूप-गन्धवाला देह होता है, रोग तथा पसीना भी नहीं होता, २ कमलकी सुगन्धी जैसा श्वास होता है, ३ रुधिर तथा आमिष गौके दुग्ध जैसा सफेद होता है और ४ आहार-नीहार कोई देखने नहीं पाता।।

ये ही चार अतिशय, समवायांगसूत्रके ४८–४९ (लिखी हुई प्रतिके) पत्रमें, ३४ अतिशयोंके अन्तर्गत इसतरह लिखे हैं:—

"निरामयनिरुवलेवा गायलट्ठी, गोखीरपंडरे मंससोणिते, पउमुप्पलगंधिए उस्सासनिस्सासे, पच्छन्ने आहारनीहारे अदिस्से मंसचक्खुणा"

अर्थ:—निरामय तथा निर्मलशरीरवाले, गोदुग्ध जैसे सफेद मांस-रुधिरवाले, कमल जैसे सुगंधित श्वासोच्छ्वासवाले, तथा जिनके आहार नीहार चर्मचक्षुसे न दीख पडे।

अब बतलाइये, भीखमजीमें ऊपरकी बातें पाई जाती थीं?। जब नहीं पाई जाती थीं, तो फिर उसके 'जन्मकल्याणक' कहनेवाला महामृषावादी नहीं तो और क्या?। अस्तु, अब आगे चलें।

भीखमजीने ढुंढकसाधु रुगनाथजीके पास दीक्षा तो लेली, परन्तु उसको पीछेसे बहुत पश्चाताप होने लगा। इसके मनमें अनेक प्रकारकी शंकाएं होने लगीं। उन साधुओंके आचार-विचारोंको देख करके इसके मनमें विचार हुआ कि-'मैं शुद्ध मार्ग पकडुं' क्योंकि दूसरी ढालके प्रथम दोहेमें कहा है:–

"विधसु करी विचारणा, वारंवार विशेष ।
शुद्धमारग लेणो सही, परभवसामो देख" ॥ १ ॥

मनुष्य जब किसी कार्यके करनेका विचार करता है, तब उसको अच्छा ही समझ करके करता है। इसी तरह भीखमजीने विचार तो शुद्धमार्गके पकडनेका किया, लेकिन यह तो न समझ सका कि–'मैं इससे भी अधिक अंधेरेमें जानेका विचार कर रहा हूँ। ढूंढकमतमें दीक्षा लेकर 'परमात्माकी मूर्तिको न मानना' 'रात्रिको पानी नहीं रखना' 'मूँहपर मुहपत्ती (कपडेका टुकडा) बांध रखना' इत्यादि जैनशास्त्रविरुद्ध वर्ताव कर अंधेरेमार्गका स्वीकार तो किया ही था। इससे भी, बुद्धिके वैपरीत्यसे और अंधेरेमार्गमें जानेका विचार किया।

भीखमजीने अपने गुरुके साथमें किस तरह चर्चा की, गुरुने किस २ तरह समझाया तथा भीखमजी उसकी एक न मानकर किसतरह अलग हुआ, यह सारी बात 'तेरापंथ-मतसमीक्षा' में दिखलादी है, इस लिये यहाँ लिख कर पुनरुक्तिके दोषमें उतरना अच्छा नहीं समझते।

भीखमजीने जब ढूंढकमत, छोड अलग अडंगा जमानेका विचार किया, तब उसके साथमें तेरह साधु तय्यार हुए। और इसीसे इसने अपने पंथका तेरापंथ नाम रक्खा। इसने विना गुरुके ही संवत् १८१७ के आसाढ शुदि १५ के दिन केलवास (मेवाड) में अपने आपसे दीक्षा ले ली। नये पंथको निकालते हुए ही 'प्रथमकवले मक्षिकापात' का नमूना यहाँ पर ही हुआ। क्योंकि भगवतीसूत्रके २५ वे शतकके ६ उद्देशेमें इस मतलबका पाठ है कि–'छेदोपस्थापनीयचारित्र सिवाय गुरुके नहीं मिल सकता।'

देखिये इसकी सिद्धिकरने वाले दो पाठः—

" पुलाए णं भंते ! किं सामाइयसंजमे होज्जा, छेओवट्ठावणियसंजमे होज्जा, परिहारविसुद्धियसंजमे होज्जा, सुहुमसंपरायसंजमे होज्जा, अहक्खायसंजमे होज्जा ? गोयमा ! सामाइयसंजमे होज्जा, छेओवट्ठावणियसंजमे होज्जा, णो परिहारविसुद्धियसंजमे होज्जा, णो सुहुमसंपरायसंजमे होज्जा, णो अहक्खायसंजमे होज्जा, एवं बउसेवि। एवं पडिसेवणाकुसीलेवि। "

(भगवती–पत्र–१७३३)

अर्थ.—हे भगवन् ! पुलाकनियंठा, क्या सामायिकसंयममें होता है, छेदोपस्थापनीयसंयममें होता है, परिहारविशुद्धिसंयममें होता है, सूक्ष्मसपरायसंयममे होता है, और यथाख्यातसंयममें होता है ? भगवान्ने कहाः—

हे गौतम ! सामायिकसयममें होता है, छेदोपस्थापनीयसंयममें होता है। और परिहारविशुद्धिसयम, सूक्ष्मसंपरायसंयम तथा यथाख्यातसंयममे नहीं होता। इसी तरहसे बकुश और प्रतिसेवणाकुशीलमें भी समझ लेना।

जब यह सिद्ध हुआ कि—बकुशादि नियंठे सामायिकचारित्र और छेदोपस्थापनीयचारित्रमे ही होते हैं, तब यह देखनेकी आवश्यकता है कि—बकुशादि नियंठे तीर्थमें ही होते हैं कि अतीर्थमे। इसके लिये भगवतीसूत्रके, [२५ श० ६ उ० पत्र] १७३७ के पाठको देखियेः—

" पुलाए णं भंते ! किं तित्थे होज्जा, अतित्थे होज्जा ? । गोयमा ! तित्थे होज्जा, णो अतित्थे होज्जा एवं बउसेवि। एवं पडिसेवणाकुसीलेवि। "

अर्थः—हे भगवन् ! पुलाकनियंठा, क्या तीर्थमें होता है, कि अतीर्थमें होता है ? । भगवान् कहते हैं:—गौतम ! तीर्थमें होता है, अतीर्थमें नहीं होता है। इसी तरहसे बकुश और प्रतिसेवणाकुशीलको भी समझना ।

बस, सिद्ध हो चुका कि, जब बकुशादि नियंठे तीर्थमें होते हैं, तो फिर जिनमें बकुशादि नियंठे रहते हैं, वे दो चारित्र (सामायिक-चारित्र, छेदोपस्थापनीयचारित्र) भी तीर्थमें ही हुए ।

अब यह विचारनेकी बात है कि--भीखमजी, जब तीर्थमें ही नहीं रहे-संघमें ही नहीं रहे--गुरुपरंपरामें ही नहीं रहे, तो फिर उनको सामायिकचारित्र और छेदोपस्थापनीयचारित्र मिला ही कहाँसे ? तीर्थमें तो साधु वे ही गिने जा सकते हैं कि, जो गुरुपरंपरामें होते हैं । और ऐसे तो भीखमजी थे नहीं । इन्होंने तो बिना गुरुके ही मुंडवा लिया था । और इससे यह भी प्रत्यक्षसिद्ध हुआ कि—भीखमने पंथ निकालनेके प्रारंभमें ही भगवान्की आज्ञाके विराधनेका 'श्रीगणेशाय नमः' किया ।

भीखुचरित्रके लेखकका यह लिखना बिलकुल झूठ है कि:—

" उदे उदे पूजा कही, श्रमण निग्रंथनी जाण ।
तिणसुं पूज प्रगट थया, ए जिन वचन प्रमाण" ॥२॥

यह उदय उदयमें पूजा तेरापंथी साधुओं जैसे महात्माओं (!) की नहीं कहीं । किन्तु श्रमणनिर्ग्रंथोकी कही है । और भगवान्के कथनानुसार श्रमणनिर्ग्रंथोंकी पूजा हुई भी है। देखिये, दो हजार वर्षके भस्मग्रहके उतरनेके पश्चात् अभी तक ४४१ वर्ष हुए हैं । इतने वर्षोंके

बीचमें महाप्रभावक निर्ग्रंथ पुरुष, जैसे श्रीसोमसुंदरसूरि, श्रीमुनिसुंदरसूरि, श्रीरत्नशेखरसूरि, श्रीहेमविमलसूरि, श्रीआनंदविमलसूरि, श्रीविजयदानसूरि, श्रीहीरविजयसूरि, श्रीविजयसेनसूरि, श्रीयशोविजय उपाध्याय, एवं खरतरगच्छमें श्रीजिनभद्रसूरि, श्रीजिनचंद्रसूरि, श्रीजिनसमुद्रसूरि, श्रीजिनचंद्रसूरि, श्रीजिनसिंहसूरि और श्रीसमयसुंदर उपाध्याय वगैरह ऐसे ऐसे हुए हैं कि-जिन्होंने यवनराजाओंको प्रतिबोध करके भी जैनशासनको दीपाया है। इन्होंने अनेक तीर्थोंके उद्धार करवाये हैं और अहिंसाधर्मका प्रचार भी किया है।

ऊपर जिन आचार्योंके नाम दिये गये हैं, ये तो सिर्फ तपगच्छ तथा खरतरगच्छके ही आचार्योंके नाम हैं, परन्तु इनके सिवाय और भी गच्छोंमें बहुतसे प्रभावक आचार्य हुए हैं। अब तेरापंथी बतावें कि-इन ४४१ वर्षोंके दरमियान तुम्हारे कौन कौनसे ऐसे प्रभावक पुरुष हुए, जिन्होंने परमात्माके शासनकी शोभा की हो? । पाठकोंको यह बात स्मरणमें रखनी चाहिये कि-इस तेरापंथमतको उत्पन्न हुए ही १५० वर्षोंके करीब हुए हैं। अब बतलाइये, भगवान्ने तो दो हजार वर्षके बाद निर्ग्रंथोंकी पूजा होनेका कहा है, तो फिर ये तुम्हारे भीखमजी तीनसो वर्षों तक किस चिडीयेस्वानेमें घुस रहे थे? भगवानके कहे अनुसार तो तुम्हारे माने हुए निर्ग्रंथोंकी पूजा नहीं हुई।

आगे चलकर भीखुचरित्रका लेखक लिखता है कि:—

‘ वली बंकचुलीयामां वारंना त्रेपना पछी विचार।
अधिक पूजा अरिहंते कही श्रमणनिर्ग्रंथनी श्रीकार ’ ॥२॥

लिखनेवाला भूल गया। जिस ‘ वग्गचूलिया ’ का यह प्रमाण इसने दिया है, उसी वग्गचूलियामें खास करके लिखा हुआ है कि:—

"विक्कमकालाओ पणरसय-पणहत्तरीवासेसु गएसु कोहंडि-अपरिग्गहियवंतरिप्पहावाओ भारहे वासे सुयहीलणा जिणपडिमाभत्तिनिसेहकारया सच्छंदायारा दुम्मेहा मलिणा दुग्गइगामिणो बहवे भिक्खायरा समुप्पज्जिहिंति।"

अर्थः—विक्रम स० १५७५ वर्ष होनेके बाद कोहंडी अपरिगृहिता व्यंतरीके प्रभावसे भरतक्षेत्रमें सूत्रकी निंदा करनेवाले, जिन-प्रतिमाकी भक्तिका निषेध करनेवाले, स्वच्छंदाचारी, दुर्बुद्धि, मलिन तथा दुर्गतिगामी ऐसे बहुत भिक्षु उत्पन्न होंगे।

अब बतलाईये, ऊपर दिखलाए हुए आचारवाले तेरापंथीके साधु हैं कि नहीं? । उपर्युक्त सभी बातें तेरापंथियोंमें पाई जाती हैं, तो फिर भगवान्के कथनानुसार ये शासनके ध्वस करनेवाले क्यों न कहे जॉय? इनको निर्ग्रंथ कहनेका साहस कौन बुद्धिमान कर सकता है? । अस्तु इससे भी आगे चलिये । इसी 'वग्गचूलिया' में प्रतिपादित किया है:—

"तए णं ते दुवीसं वाणियगा उम्मुक्कबालवत्था विन्नाय परि-णमयित्ता दुट्ठा धिट्ठा कुसीला परवंचगा खलुका पुव्वभवमिच्छ-त्तभावाओ जिणमग्गपडिणिया देवगुरुनिंदणया तहारूवाणं समणाणं माहणाणं पडिकुट्ठकारिणो जिणपन्नत्तं तत्तं अमन्नमाणा अत्तपसंसिणो बहूणं नरनारीसहस्साण पुरओ नियत्थप्पाणं नियकप्पियं कुमग्ग आघवेमाणा पन्नवेमाणा परूवेमाणा जिणप-डिमाणं भंजणयाणं हिलंता खिसता निंदिता गरहिता परिह-वति चेइयतित्थाणि साहू साहूणी य उद्दावइस्संति"

अर्थः—वे बाईस पुरुष, बालभावसे मुक्त, जानकरके, परिणाम करके, दुष्ट, धृष्ट, कुशील, परवचक, उद्धंठ, पूर्वभवके मिथ्यात्व-

भावसे जिनमार्गके प्रत्यनीक, देवगुरुके निंदक, साधु–माहणके निंदक, जिनतत्त्वोंको नहीं माननेवाले, आत्मप्रशंसक, बहुत स्त्री–पुरुषोंके आगे स्वकल्पित कुमार्गकी प्ररूपणा करनेवाले, जिन-प्रतिमाके निंदक, हीलणा करने वाले, मूर्तिपूजा–तीर्थ तथा साधु–साध्वीकी उत्थापना करने वाले होंगे ।

इसमें कही हुइ बातोंसे भी तेरापंथियोंके आचारोंको मिला लीजिये। 'कुशीलता' 'परवंचकता' 'जिनमार्गकी प्रत्यनीकता' 'देव–गुरुकी निंदकता' 'जिनतत्त्वोंको न मानना' 'आत्मप्रशंसा करना' 'स्त्री–पुरुषोंके आगे कुमार्गकी प्ररूपणा करना' 'जिनप्रतिमाकी हेलणा करना' 'मूर्तिपूजा–तीर्थ और सच्चे साधु–साध्वियोंकी उत्थापना करना' ये सारी बातें तेरापंथियोंमें पाई जाती हैं कि नहीं ?। अब हम क्यों नही कह सकते ह कि–तेरापंथी जैन है ही नहीं । यदि जैन होते तो जैनशास्त्रोंमें कहे हुए सिद्धान्तोंसे विपरीत क्यों प्ररूपणा करते ?।

अगर कोई तेरापंथी यह कहे कि–'ऊपर जो बात कही है, यह तो बाईसम्प्रदाय वाले अर्थात् ढूंढकोंके लिये है, हमारे लिये नहीं ।' तो यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि–तेरापंथी भी तो ढूंढियोंमेंसे निकले हैं। और ढूंढकोंमेंसे निकलकरके भी इन्होंने क्या अच्छा काम किया ? उलटे 'दया' और 'दान' का निषेध करके और अंधकारमें जा फँसे । फिर क्योंकर यह हो सकता है कि–तेरापंथीके ऊपर, उपर्युक्त पाठ नहीं लग सकता ? । अवश्य लग ही सकता है ।

तेरापंथी लोग इस बातका भी घमंड नहीं कर सकते हैं कि–'हमारेमें बडे २ धनी लोग हैं ।' क्योंकि–वग्गचूलीयाका नीचे दिया

हुआ पाठ ही यह कह रहा है कि–'उस समयमें जैनमुनियोंका उदय–पूजा–सत्कार नहीं होगा। क्योंकि जैनमार्गके उत्थापकोंकी जालमें बहुत लोग फॅस जायेंगे।' देखिए पाठ यह है:—

"सामीयरूवियस्स सुयस्स हीळणे णं भविस्सइ, तया णं सुयहीळे समणाण निग्गंथाणं णो उदय-पूआ-सक्कारे सम्माणे भविस्सइ"

पापमें प्रवृत्तिकरनेवाले संसारमें मनुष्य बहुत होते हैं। और इससे ऐसे कुपंथियोंकी जालमें यदि बिचारे भोले लोग फॅस भी जॉय, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

ऊपरके पाठोंसे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि– तेरापथी जो कहते हैं कि वग्गचूलियामें कहे मुताबिक निर्ग्रंथकी पूजा होनेके लिये ही भीखमजी उत्पन्न हुए, यह बिलकूल झूठ बात है। उपर्युक्त पाठोंसे तो यही सिद्ध हुआ कि–शासनके प्रत्यनीक होंगे, ऐसा जो वग्गचूलियामें लिखा गया है, यही भीखमजी और इसके अनुयायी तेरापंथियोंके लिये लिखा गया है। क्योंकि ऊपरकी सभी बातें इन लोगोंमें पाइं जातीं हैं।

अब कोई तेरापथी यह कहे कि–'वग्गचूलियाके उपर्युक्त पाठोंको हम नहीं मानेंगे। क्योकि–यह बत्तीससूत्रोंमे नहीं हैं।' यह कहना भी बडी अज्ञानताका सूचक है। उदय उदय पूजाके लिये तो वग्गचूलियाकी साख देनेमें कोई हानी न दीख पडी और उसी वग्गचूलियाके और पाठोंके लिये तो 'बत्तीससे बाहर' का कारण दिखलाया जाय। यह भी एक प्रकारका दुराग्रह ही नहीं तो और क्या ?।

और भी देखिये। जिस 'ठाणांग' सूत्रको तेरापंथी भी मानते हैं। उसी ठाणांगके दसवें ठाणेके पत्र ५८० में 'वग्गचूलिया' का नाम आता है। देखिये वह पाठ:—

"संखेवियदसाणं दस अज्झयणा प० तं जहाः—खुड्डियाविमाणपविभत्ती महल्लियाविमाणपविभत्ती अंगचूलिया वग्गचूलिया विवाहचूलिया अरुणोववाए वरुणोववाए गरुलोववाए वेलंधरोववाए वेसमणोववाए।"

जब उनके माने हुए अंगसूत्रमें भी नाम आते हुए, यदि वे न मानें, तो समझना चाहिये कि—इन लोगोंकी जबरदस्ती अल्लाउद्दीन खिलजीकी जबरदस्तीको भी हरा देनेवाली है। अस्तु, न्यायकी बातका निष्पक्षपाती पाठक तो अच्छी तरह समझ ही सकते हैं।

भीखुचरित्रकी पाचमी ढालमें लिखा हैः—

"आदिनाथ आदेसरजी जिनेश्वरजगतारणगुरु।
धर्म आय काढी अरिहंत, इण दुसम आरामां करम काट्याजी॥
प्रगट्या आदिजिणंद ज्युं, ए अचरिज अधिकआवंत॥१॥

छिः छिः छि., कहाँ परमात्मा ऋषभदेव, और कहाँ इस कालका अल्पसत्त्वी भीखम। आदिनाथ भगवान्‌के साथमें, अधर्मका प्रचार करनेवाले भीखमजीकी तुलना करते हुए लेखकको लज्जा भी न आई ?। यह ऐसी ही तुलना की है, जैसी एक चक्रवर्ती या जगत के राजाके साथमें, होलीके राजाकी तुलना की जाय। भगवान् ऋषभदेवने तो संसारमें धर्म और व्यवहारकी नींवही डाली थीं, परन्तु तुम्हारे भीखमने क्या किया ?। 'दया' 'दान' 'मूर्तिपूजा' वगैरह जैनधर्मके खास सिद्धान्तोंको उच्छेदन करनेके सिवाय किया ही क्या है ?। क्या इसको आप लोग धर्मप्रवर्तक समझते हो ?। क्या भीखुनजी उत्पन्न होनेके पहिले जैनधर्म—जैनशासन चलता ही नहीं था ?। अरे! हृदयके

निर्बल तेरापंथियो ! कभी भगवतीसूत्रका २० वाँ शतक, आठवाँ उद्देशा, पत्र १५०४ के प्रथम पृष्ठके

" जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए देवाणुप्पिया णं केवइयं कालं तित्थे अणुसिज्जिस्सई ? । गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए ममं एगवीसं वाससहस्साइं तित्थे अणुसिज्जिस्सइ "

इस पाठको तुम्हारे पूज्य परमेश्वर (!) के मुखसे सुना या पढा भी है ? । ऊपरके पाठमें गौतमस्वामिने भगवान्‌ने प्रश्न किया है कि—' हे भगवन् ! जंबुद्वीपमें, भरतक्षेत्रमें, इस अवसर्पिणीमें कितने काल पर्यन्त तीर्थ प्रवर्तेगा ? '

भगवान्‌ने कहा'—'जंबूद्वीपमें, भरतक्षेत्रमें. इस अवसर्पिणीमें मेरा तीर्थ इक्कीस हजार (२१०००) वर्ष पर्यन्त रहेगा । '

अब बतावे तेरापंथी. भगवान्‌का कथन सत्य ? कि तुम्हारा कथन सत्य ? । जब भगवान्‌का तीर्थ ही इक्कीसहजार वर्ष पर्यन्त चलनेका है, तो फिर कैसे कहते हो कि, भीखमजी, ऋषभदेव भगवान्‌की तरह धर्म प्रवर्तक थे ? ।

यहाँपर 'तीर्थ' शब्दका अधिकस्पष्टिकरण करना समुचित होगा । 'तीर्थ' शब्दसे साधु-साध्वी-श्रावक—श्राविका ये चतुर्विधसंघ समझना चाहिये । क्योंकि भगवतीसूत्रके २० श० ८ उ० पत्र १५०४ में उपर्युक्त पाठसे ही संबंध रखनेवाला इस तरहका पाठ है:—

" तित्थं भंते ! तित्थे, तित्थंकरे तित्थे ? गोयमा ! अरहा ताव णियमं तित्थंकरे, तित्थे पुण चाउवण्णाइण्णे समणसंघे तं जहा:—समणा समणीओ सावगा सावियाओ । "

अर्थः—गौतमस्वामीने प्रश्न किया कि–हे भगवन्! 'तीर्थ' संघरूप तीर्थको कहते हैं, या 'तीर्थ' 'तीर्थकर' को कहते हैं?। भगवान्ने कहाः–अर्हन्, तीर्थकर ही कहे जाते हैं। और 'तीर्थ' तो 'चातुर्वर्णश्रमणसंघ' कहा जाता है। चातुर्वर्णश्रमणसंघ यह हैः–साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका।

जब भगवान्का यह 'तीर्थ' इक्कीसहजार वर्ष पर्यन्त चलनेवाला है, तो फिर भीखमजीको, श्रीऋषभदेवभगवान्की तरह 'धर्मप्रवर्तक' कहना सरासर सत्यविरुद्ध नहीं, तो और क्या है?।

यहाँ तेरापंथी यह कहते हैं कि–"'तीर्थ' नाम शासनका मालूम होता है। जो किसी समय साधु होवे, किसी समय न भी होवे।" आधारके सिवाय, आधेयको रखनेवाले, तेरापंथियोंकी बुद्धिप्रभाको धन्य है। तेरापंथियोंने; इस विज्ञानविद्याका प्रकाशकर, बडे २ सायन्सवेत्ताओंकी विद्याओंको भी पराजित कर दिया।

'तीर्थ' नाम है 'साधु–साध्वी–श्रावक–श्राविका' का, जो कि ऊपर कहा गया है। और 'शासन' नाम है 'प्रवचन' का। 'साधु' आदि (तीर्थ) आधार हैं, और 'प्रवचन' आधेय है। अब विचारनेकी बात है कि–जब साधु आदि (तीर्थ) ही नहीं रहेंगे, तो फिर 'शासन' (प्रवचन) किसके आधारसे रहेगा?। और भगवान् तो कहते हैं कि मेरा 'तीर्थ' (अर्थात् साधु–साध्वी–श्रावक–श्राविका,) इक्कीसहजार वर्ष पर्यन्त रहेगा, तो फिर तेरापंथी ऐसा कैसे कह सकते हैं कि, 'किसी समय साधु न भी होवे, और 'तीर्थ' रहे?'। इस 'वन्ध्या पुत्र' जैसे नियमको कौन मानेगा?। यह तो प्रत्यक्ष ही 'वदतो व्याघातः' है कि–

'तीर्थकी विद्यमानता मान करके भी 'साधु' की अविद्यमानता मानना।

और भले ही 'तीर्थ' शब्दका अर्थ 'प्रवचन-शासन' रहे, तो भी पूर्वोक्त आधार आधेयकी युक्तिके अनुसार आपकी खिचडी नहीं पकनेवाली है। क्योंकि-प्रवचन, सिवाय चतुर्विधसंघके नहीं रह सकता। चतुर्विधसंघ के अभावमे भी अगर 'प्रवचन-शासन' रहता हो, तो महावीरदेवके शासनकी मर्यादा, इक्कीसहजार वर्ष तककी नहीं दिखला कर आगामी चौवीसीके प्रथम तीर्थंकर 'पद्म-नाभ' के शासन चलनेके पहिले सनयतक कहनी चाहिये थी। जब ऐसा नहीं कहा, तब निश्चित होता है कि-चतुर्विधसंघके आधार सिवाय प्रवचन-शासन (आधेय) नहीं रह सकता है।

भीखु चरित्रकी छठवी ढालके प्रारंभमे लिखा है:—

"चरमकल्याणक हुओ घणुं, तिणरो सुणो सहु विस्तार।
सरियांरिमां स्वामिजी विराजियां, हवे भाद्रवा मास मोजार"।१।

पहिले कहा जा चुका है कि-कल्याणक तीर्थंकरोंके होते हैं। और वे पांच होते हैं.-१ च्यवन (गर्भमें आनेका) २ जन्म, ३ दीक्षा, ४ ज्ञान (केवलज्ञान) और ५ निर्वाण (मोक्ष)। भीखमजी जैसे 'देवानांप्रिय' के भी उनके भक्तोंने कल्याणक लिख मारे। लेकिन इसमे भी 'च्यवन' 'दीक्षा' और 'केवलज्ञान' कल्याणक तो बतलाए ही नहीं। और यकायक कूदकर चरम (अन्तिम) कल्याणकपर आ पहुँचा। अन्तिम कल्याणक उसीका होता है जिसका मोक्ष होता है। तेरापंथी लोग बतावें, भीखम-जीका क्या मोक्ष हुआ?। लेकिन 'मोक्ष हुआ' ऐसा तो मानते

नहीं, फिर चरम कल्याणक कैसा ? खैर, तेरापंथी लोग, भीखमजीका 'मोक्ष' न मानकर पांचवॉ देवलोक मानते है, यह भी सरासर झूठ है, क्योंकि छेवट्टेसंघयणवालेको, चतुर्थदेवलोकके ऊपर गति ही नहीं है, इस प्रकार जैनशास्त्र फरमाता है। तो फिर भीखमजीका पांचवॉ देवलोक हुआ, ऐसा भी क्योंकर माना जाय ? ।

अफसोसकी बात है कि—लेखकको, तीर्थंकरोंके कल्याणकोंकी तरह भीखमके कल्याणक लिखते हुए जरासा भी भवका डर नहीं हुआ, उसके विषयमें हम लिखें ही क्या ? ।

भीखमजीका जब अन्तसमय नजदीक आया, तब उसने अपने चेले चापटोंको उपदेश दिया है कि:—

''जिणतीणनेरे जिणतिणने मत मुंडजोरे, दीक्षा देजो देख देखरे ॥ ११ ॥

उपदेश तो बहुत ही अच्छा, पर इसके अनुकूल वर्ताव कौन करता है ? । लेकिन इसमें एक बात तो यह है, खुद उपदेशक ही कूएमें गिरा हुआ हो, तो फिर चेले क्या कर सकते हैं ? । जिसकी मूल उत्पत्ति ही संमूर्च्छिमपनेसे हुई है, उसकी परंपराका फिर क्या ठिकाना रह सकता है ? । और उस संमूर्च्छिम मतके साधु भी, परीक्षा करके कैसे मूंडे ? । तब कहना होगा कि—भीखमजीका यह उपदेश वचन मात्र हीमें था। और हुआ भी वैसा ही। आज कल भी हम देखते हैं कि, 'जो आया सो मूंडा' ऐसा हाल हो रहा है । अभी कालूराम नामक, तेरापंथके पूज्यके पासमें दो दो छोटे छोटे ऐसे बालक मूंडे हुए देखे जाते है, कि जो बिचारे साधुपना किस चीडीयाका नाम है ? यह भी समझनेकी शक्ति

नहीं रखते । अर्थात् बिलकुल छोटे, यानि दश वर्षके अन्दर २ के प्रायः हैं । अब बतावें, तेरापंथीके पूज्य कालुरामने, कैसी शिक्षा देकर उन बिचारे बालकोंको दीक्षा दी ? । बतलाईये, तुम्हारे मजोरथदायक–तुम्हारे माने हुए तीर्थंकर भीखमजीकी आज्ञाका खून हुआ, या कि नहीं ? ।

आगे चलकर भीखुचरित्रकी दसवीं और ग्यारहवीं ढालमें यहाँ तक गप्पमार दी है कि–भीखमजी जब यमराजके अतिथि होनेके समयपर आए, अर्थात् मरने लगे, उस समय उनको 'अवधि-ज्ञान' हुआ था । जरासा भी है भवका डर यदि होता तो, ऐसी बेसिरकी बात लिखता ही क्यों ? । हम पूछते हैं कि–क्या इस वर्तमान कालमें किसी धुरंधर आचार्यको भी अवधिज्ञान हुआ है?। नहीं। तब फिर इस महा अधर्मका प्रचार करनेवाले भीखमको कैसे अवधिज्ञान होगया ? । और अवधिज्ञान हुआ, इसमें प्रमाण ही क्या है? और प्रथम तो उसमें शास्त्रोक्त चारित्र ही नहीं था, तो फिर अवधिज्ञानकी संभावना ही क्या हो सकती है ?। ऐसी गप्पें ठोक-नेसे क्या तेरापंथियोंकी खिचडी पक सकती है ? । कभी नहीं ।

फिर ग्यारहवीं ढालमें लिखा है:—

'प्रथमपद परमेसररे त्यांरा कल्याणक पांच प्रकार ।
इणविध कल्याणक त्यांरा हुआरे, इण दुसमकालमोझार' ॥१०॥

अधर्मकी हद आ चुकी । और क्या कहा जाय ? । कल्याणक किसके होते हैं ? जिसके कल्याणक होते हैं, उसको गर्भमेंसे ही कौन कौन ज्ञान होते हैं, जन्मसे कौन २ अतिशय होते हैं, ये सारी बातें पहिले कह दीं गईं हैं, इससे पाठक समझ गये होंगे कि–कहाँ मोक्षमें जाने वाले अर्हन् तीर्थंकर, और कहाँ दया–दान-

मूर्तिपूजा आदिको उठानेवाला भीखम। क्या कभी ऐसे अल्पज्ञ पुरुषोंके भी कल्याणक हो सकते हैं ?। भगवान्के कल्याणकोंके समयमें तो इंद्रादि देवता भक्ति करनेको आते हैं, कल्याणकोंके समय में नारकीके जीवोंको भी क्षणभर सुख होता है। कहिये, भीखमके कल्याणकोंके समयमें क्या हुआ ?।

अन्तमें जा कर तेरहवीं ढालमें भी जगह २ परमात्मा ऋषभदेव-भगवान्के साथही समानता दिखलाई है। लेकिन इस विषय पर पहिले ही तेरापंथियोंकी अज्ञानताकी–अंधश्रद्धाकी फोटू खींची गई है, इस लिये यहाँ विशेष लिखनेकी जरूरत नहीं है।

अगर सामान्यदृष्टिसे देखा जाय तो भी भिखमजी, उत्तम पुरुषोंकी पंक्तिमें गणना करने योग्य नहीं मालूम होता है। क्योंकि--जिस दिन वह मरा है, उस दिन बडे कष्टोंसे इसकी मृत्यु हुई। क्योंकि प्रातःकालके एक प्रहर दिन जानेके पश्चात्, सायंकालके प्रहर डेढ प्रहर दिन रहने तक; जब तक कि, भीखमकी मृत्यु नहीं हो गई, तब तक इसकी जिव्हा बिलकुल बंध हो गई थी, अतएव अवाच्य वेदनाका अनुभव करना पडा था। अब यह सोचनेकी बात है कि–क्या, जो उत्तम पुरुष होते हैं, उनकी ऐसी मृत्यु कभी होती है ?। कभी नहीं। उत्तम पुरुषोंकी मृत्यु तो शुभ अध्यवसाय पूर्वक होती है।

सार—संक्षेपसे कहा जाय तो, भीखम चरित्रके पढनेसे मालूम होता है कि–भिखम बिलकुल निरक्षर भट्टाचार्य था। उसने अपनी मानता-पूजाके लिये ही अपने जीवनमें जो कुछ किया है, सो किया है। अपनी पूजा करानेके लिये ही परमात्माकी पूजाका निषेध किया है। अपनी अज्ञानताके परिणामसे ही वह सूत्रोंके अर्थोंको

न समझ सका, और मनमें आई वैसे परूपणा की । आज पर्यन्त भी उसकी परंपरामें आए हुए साधु–साध्वी मारवाड–मेवाडमें अ-धर्मका प्रचार कर रहे हैं, इसका मूल कारण भीखम ही है । यह, भीखमके उपदेशका ही परिणाम है कि, उनके साधु, साध्वियोंके झुंडोंके झुंडोंको साथमें रखकर घूमते है । साध्वियोंसे आहार पानी मंगवा कर माल उडाते हैं । एक एक दिनको छोड कर नियमसे उन्हीं श्रावकोंके वहाँ गोचरी जाते हैं । एक ही घरसे जी चाहे जितना माल उठाते है । सारे दिन भर, बल्कि रात्रिको भी साध्वियाँ और श्राविकाओंको बैठा ही रखते हैं । पडदेमें जाकर साध्वीके दिए हूए आहारको खाते हैं । भगवान्ने तो फरमाया है कि चित्रामणकी पुतली भी जिस मकानमें हो, उसमें नहीं रहना । और ये उपर्युक्त व्यवहार करते हैं । इससे स्पष्ट जाहिर हो जाता है कि–इस पथके मूल उत्पादक भीखमका, उपदेश और आचार दोनों शास्त्र विरुद्ध थे ।

अस्तु, अब आगे तेरापंथियोंके मन्तव्य और आचारों पर कुछ विचार करें ।

मुहपत्ती.

यह लोकोक्ति बहुत ही सत्य है कि–'आकृतिर्गुणान् कथयति' मनुष्यकी आकृति ही, मनुष्यके गुणोको कह देती है । और वह आकृति प्राय करके मनुष्यके वेषादिपर विशेष आधार रखती है । तेरापथी साधु–साध्वियोंको जिन्होने देखे होंगे, वे अच्छी तरह जानते होंगे कि–उनकी आकृति कैसी होती है ? । हम

यहाँ, उनके वेषकी आलोचना करके पाठकोंका अधिक समय लेना नहीं चाहते, परन्तु इतना जरूर कहेंगे कि—अगर किसी मनुष्यको पहलेही पहल तेरापंथी साधुके देखनेका सौभाग्य मिले तो वह एक दफे तो इसकी आकृतिसे डरे नहीं, तो स्तम्भित तो जरूरही हो जाय। अस्तु, जो कुछ हो, परन्तु इतना तो जरूरही है कि—यदि वे जैनी साधु होनेका दावा रखते हैं, तो जैनी साधुके वेषकी दृष्टिसे तो वह उनका वेष अप्रामाणिक ही है।

जैन शास्त्रोंमें साधुओंको जो उपकरण रखने कहे हैं, उनकी खास मर्यादा बंधी हुई है। मरजीमें आवे, वैसे रखनेको नहीं कहे। लेकिन ठीकही है कि जो विचारे शास्त्रोंकी मर्यादाको नहीं समझते हैं, धुरंधर आचार्योंके वचनोंपर जिनको विश्वास नहीं है, और जो लोग हमेशा अपनी कपोल कल्पनासेही काम चलाना चाहते हैं, वे इस प्रकार अमर्यादित वस्तुओंको रख कर कुलिंगपनेको धारण करें; तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

खैर, इसपर विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं है। हम यहाँपर जो कुछ लिखना चाहते हैं, वह तेरापंथी साधु जो दिनभर मूँहपर मुहपत्ती बांध रखते हैं, इस विषयमें है। अतएव इसी विषयपर प्रथम कुछ परामर्श करें।

मुहपत्तीको मुँहपर बांधे रखना, यह व्यावहारिक दृष्टि, युक्ति और आगमप्रमाण किसीसे भी सिद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि देखिये।

पहिले तो यह सोचना चाहिये कि—मुहपत्ती रक्खी किस लिये जाती है?। इसके उत्तरमें मुहपत्तीको रखनेवाले सभी

कोई स्वीकार करेंगे कि 'मुहपत्ती उपयोगसे बोलनेके लिये' रक्खी जाती है। क्योंकि साधुको जितने कार्य करनेके है, वे सब उपयोगसे—यतनासे करनेके है। जैसे दशवैकालिक सूत्रके, चतुर्थ अध्ययनकी ८ वीं गाथा, पत्र २२२ में कहा है:—

जयं चरे जयं चिट्ठे जयमासे जयं सए।
जयं भुंजंतो भासंतो पावं कम्मं न बंधइ ॥ ८ ॥

अर्थात्—यतनासे चलते, यतनासे खड़े रहते, यतनासे बैठते, यतनासे सो रहते, यतनासे आहार करते तथा यतनासे बोलते हुए साधुको पापकर्मका बंध नहीं होता है।

कहनेका मतलब यह है कि, प्रत्येक कार्य साधुको यतना पूर्वक—उपयोगके साथ करनेके हैं। बात भी ठीकही है। 'परिणामसे बंध,' 'क्रियासे कर्म' और 'उपयोगसे धर्म' होता है। जिस क्रियामे उपयोग नहीं रहा, उस क्रियामें यदि जीवकी विराधना न भी हो, तौभी वह क्रिया दोषीली है। और उपयोग रखते हुए भी कथंचित् जीवविराधना हो भी जाय, तो उसको कर्म बंध नहीं होता। बस, इसी तरह उपयोगपूर्वक बोलनेके लिये हाथमें मुहपत्ती रखनेका भगवान्ने फरमाया है। लेकिन किसी सूत्रमें यह नहीं फरमाया कि—'उपयोग रखनेके लिये मुँहपर मुहपत्ती बांधेही रखना।' और ऐसा किसी चरित्रमें भी नहीं देखा जाता है कि—'किसीने मुँहपर मुहपत्ती बांधी हो। जब ऐसी ही अवस्था है, तो फिर यह कहना सत्य विरुद्ध नहीं होगा कि—मुँहपर मुहपत्ती बांधना शास्त्र और व्यवहार दोनोंकी दृष्टिसे अनुचित है।

श्वेताम्बर मूर्त्तिपूजक साधुओंको छोड कर, तेरापंथी और ढूंढिये, दोनोंके साधु—साध्वी दिन भर मुहपत्ती मुँहपर बांधे रखते है।

लेकिन इन दोनोंकी मुहपत्तियोंमें फर्क है। स्थानकवासियोंकी मुहपत्ती चौडी अधिक रहती है, और तेरापंथियोंकी मुहपत्ती चौडी थोडी और लंबी विशेष रहती है। अब एकही सिद्धान्तको माननेवाले दोनोंमे ऐसा विभेद क्यों? क्योंकि जिन बत्तीस सूत्रोंको ढूंढिये मानते हैं, उन्हीं बत्तीस सूत्रोंको तेरापंथी भी मानते हैं। और ये दोनों, बत्तीस सूत्रोंके सिवाय भाष्य–चूर्णि–निर्युक्ति–टीका वगैरहको नहीं मानते हैं। फिर मुहपत्तीके बाधनेमें ऐसा फर्क क्यों? यह एक स्वाभाविक प्रश्न उपस्थित होता है। और अन्तमें इसमें यही परिणाम निकालना होगा कि–इन दोनोंका बाधना शास्त्र विरुद्ध है।

हम यह समझते थे कि–इन लोगोंमें जब इतनी प्रवृत्ति चल पडी है, तो शास्त्रोंके विपरीत अर्थोंद्वारा भी कुछ न कुछ उत्तर तो देते होंगे। लेकिन यह कल्पना मात्रही ठहरी। अभी कुछ दिन हुए, स्थानकवासी (ढूंढक) पूज्य श्रीलालजीके व्याख्यानमें, एक मनुष्यने प्रश्न किया कि–'महाराज! मुहपत्ती मूँहपर बाधना, बत्तीस सूत्रोंमेंसे किस सूत्रमें लिखा है?'। श्रीलालजीने व्याख्यानमें स्पष्ट कह दिया कि–'बत्तीस सूत्रोंमेंसे किसी सूत्रमें मूँहपर मुहपत्ती बांधना नहीं लिखा है।' इससे साफ जाहिर हो जाता है कि–'मुहपत्ती बांधनेवाले भी इस बातको तो स्वीकार करते ही हैं कि–मूँहपर मुहपत्ती बांधना शास्त्रविरुद्ध है।'

श्रीलालजीकी एक और बातसे हमे विशेष आश्चर्य हुआ। दूसरे ही दिन एक मनुष्यने श्रीलालजीसे पूछा कि–"महाराज! आपने कल फरमाया था कि–मूँहपर मुहपत्ती बाधनेका किसी सूत्रमें नहीं लिखा, तो हाथमें रखनेका लिखा है कि नहीं?" श्रीलालजीने कहा:–"हाथमें रखनेका भी नहीं लिखा"।

देखिये पूज्यजीकी मिश्रभाषा ! ।. पूछनेवाला भूल गया, नहीं तो उन्हें पूछना चाहिये था कि–'जब मूँहपर बांधनेको नहीं लिखा, हाथमें रखनेको नहीं लिखा, तो क्या फेंक देनेको लिखा है या गले बांधनेको लिखा है ? । और यह भी पूछना चाहिये था कि–'जब बांधनेको नहीं लिखा, तो फिर आप क्यों बांधते हैं । ' अस्तु !

यहाँ पर कहनेका तात्पर्य यह है कि–स्थानकवासी साधु-साध्वी यद्यपि मूँहपर मुहपत्ती बांधते हैं, परन्तु इतना जरूर मानते हैं कि–'मुहपत्ती बांधना सूत्रोंमें कहीं नहीं लिखा । '

इसी तरहसे तेरापंथी भी इस बातको तो जरूर स्वीकार करते हैं कि–'मुहपत्ती बांधना, किसी सूत्रमें नहीं कहा । ' तिसपर भी बांधते हैं, और अनेक प्रकारकी कुयुक्तियां भी लगाते हैं। लेकिन उनकी, वे कुयुक्तियां क्या हैं, मानो उनकी अज्ञानताकी, भिन्न २ स्वरूपकी तस्वीरें हैं । अर्थात् उन कुयुक्तियोंसे यह जाहिर हो जाता है कि–अपने कक्कको सच्चा मनानेके लिये अपनी बुद्धिका उन्होंने कैसा दुरुपयोग किया है? ।

हम सूत्रों और युक्तियोंसे 'मुहपत्तीको हाथमें रखना' सिद्ध करें, इसके पहिले, तेरापंथी, मूँहपर मुहपत्ती बांधनेके लिये जो कुयुक्तियाँ देते हैं, उन्हींके ऊपर कुछ विचार करें ।

तेरापंथी कहते हैं कि–'गौतमस्वामी जिस समय मृगालोढियेको देखनेके लिये पधारे, उस समय मृगादेवीके कहनेसे श्रीगौतमस्वामीने मुहपत्ती बांधी है । '

हम भी मानते हैं कि–गौतमस्वामीने, मृगादेवीके वहाँ जब पधारे, तब, उस समय दुर्गंधीके कारण मुहपत्ती बांधी । लेकिन

इससे तेरापंथियोंकी दाल कैसे गली ?। प्रियपाठक, पहिले उस अधिकारको देख लीजिये।

जिस समय श्रीगौतमस्वामी, मृगालोढियेको देखनेके लिये पधारे, उस समय मृगादेवीने गौतमस्वामीसे कहा:—

"एहि णं तुब्भे भंते ममं अणुगच्छह जहा णं अहं तुब्भं मियापुत्तं दारयं उवदंसेमि, तए णं से भगवं गोयमे मियंदेविं पिट्ठओ समणु गच्छइ, तए णं सा मियादेवी तं कट्ठसगडियं अणु-कट्टमाणी २ जेणेव भूमिघरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता चउप्पडे णं वत्थेणं मुहबंधमाणी भगवं गोयमं एवं व० तुब्भे विण भंते मुहपोत्तियाए मुहं बंधह, तएणं से भगवं गोयमे मियादेवीए एवं वुत्ते समाणे मुहपोत्तियाए मुहं बंधेइ २ त्ता तएणं सा मियादेवी परंमुही भूमिघरस्स दुवारं विहाडेइ तओ णं गंधो निगच्छइ"

[विपाक सूत्र पृष्ठ—२१]

भावार्थः—हे भगवन्! आप मेरे पीछे २ आईए, मैं आपको मृगापुत्र दिखाऊं। तब श्रीगौतमस्वामी मृगादेवीके पीछे चले। मृगा-देवी, उस काष्टके शकटको खींचती हुई जहाँ भूमिगृह था, वहाँ ले आई। और आकरके, चारपडवाले वस्त्रसे मूँह बांधा। और गौतमस्वामीसे कहाः—आप भी मुखवस्त्रिकासे मुखको बांधिये। इसके बाद गौतमस्वामीने मुखवस्त्रिकासे मुख बांधा। तदनन्तर मृगादेवीने भूमिगृहके द्वार खोल, और उसमेंसे दुर्गंध आने लगी।

अब इस पर विचार करनेका है कि—यदि गौतमस्वामीका मूँह बंधा हुआ होता तो मृगादेवी कहती ही क्यों, कि आप मूँह बांधिए ?। यदि यह कहा जाय कि—मूँह तो बंधा हुआ था, लेकिन मृगादेवीने नाक ढांकनेको कहा। सो यह भी ठीक नहीं है।

क्यों कि, यदि 'नाक' ढांकनेको कह होता, तो उपर्युक्त पाठमें 'मुहं बंधह' ऐसा पाठ क्यों होता ?। क्या मृगादेवीके 'नासं बंधह' कहने पर भी गणधरमहाराजने 'मुहं बंधह' गुंथन कर दिया ? । गणधर-महाराजपर ऐसा कलंक लगानेका दुष्कृत्य तेरापंथियोंके सिवाय और कौन कर सकता है ? । खैर, उपर्युक्तवृत्तान्तसे तो यही सिद्ध हुआ कि–'गौतमस्वामीने पहिले मुहपत्ती बांधी नहीं थी ।' तेरापंथी लोग, जो उपर्युक्तवृत्तान्तको आगे करते हैं, यह अपनी अज्ञानताको अपने आपसे जाहिर करनेके बराबर करते हैं ।

जब मनुष्य, वास्तविक युक्तियोंसे–प्रमाणोंसे अपना बचाव नहीं कर सकता है, तब वह 'कहींकी ईंट, कहींका रोडा' मिला मिला करके आगे करता है, परन्तु वह वास्तविक युक्ति नहीं गिनी जाती है । जिस प्रमाणका मूल विषयके साथमें संबन्धही नही है, उसको आगे करना क्या है, मानो अपनी कमजोरीको अपने आपसे जाहिर करना है ।

तेरापंथी भाई भी, मुहपती बांधनेके विषयमें वैसीही युक्तियोंको आगे करते हैं। देखिये, तेरापंथी साधु जीतमलजीकृत 'जैन-ज्ञानसारसंग्रह' नामक पुस्तकके ५२ वे पृष्ठमें, 'मुखवस्त्राधिकार' में लिखा है:–

" ज्ञाता अध्ययन आठमें, दुर्गंध व्यापि ताहि ।
षटराजा मुज मुख ढांकियां, ते दुर्गंधि नाके आय " ॥ ४ ॥
" ज्ञाता नवमे अध्यनमें, दुर्गंध व्यापि व्याल ।
मुख ढांक्या भाख्या तिहां, जिनरख ने जिनपाल "॥५॥
" ज्ञाता अध्ययन बारमे, जे जीतशत्रू राय ।
मूखढांके एम आंखिओ, दुर्गंध व्यापी तांहि " ॥ ६ ॥

उपर्युक्त तीनों प्रसंगोंको पाठक देख लेवें ।

ज्ञातासूत्रके आठवें अध्ययनमें 'मल्लीकुमारी' का वृत्तान्त चला है। मल्लीकुमारीके रूप लावण्यके वृत्तान्तको सुन करके, 'जितशत्रु' वगैरह छहों राजे, उससे विवाह करनेको आए हैं। मल्लीकुमारीके पिता 'कुंभराजा' ने उन छहों राजाओंके साथमें युद्ध किया है। पश्चात् मल्लीने अपने पितासे कहा हैः–'आप किसी प्रकारकी चिन्ता न करें, मैं इन्होंको प्रतिबोध करके ठिकाने लाऊंगी।' मल्लीकुमारीने, अपने पितासे कह करके एक धातुकी रमणीय मूर्ति ऐसी बनवाई कि, जिसमें अत्यन्त दुर्गंधी वाले पदार्थ भरे। तदनन्तर उन छहों राजाओंको, उस मूर्तिके पास बैठाए, और उस पुतलीका ढकना खोला। उस समय

"तएणं ते जियसत्तूपामोक्खा तेणं असुभेणं गंधेणं अभिभूया समाणा सएहिं २ उत्तरिज्जेहिं आसाइं पिहेइ पिहेत्ता परंमुहा चिट्ठंति।" (पृष्ठ ८३८)

अर्थः–वे जितशत्रु वगैरह छहों राजे, उस अशुभगंधसे अभिभूत होते हुए और अपने अपने उत्तरासन (दुपट्टे) से मूँह ढांक करके पराङ्मुख हो बैठे।

इसी प्रकारसे दुर्गंधके कारण ज्ञाताके नवमे अध्ययनमें जिनरिख और जिनपाल ने मूंह ढांका है, और बारहवें अध्ययनमें दुर्गंधीके कारणसे ही जितशत्रु ने मूँह ढांका है।

अब पाठक विचार कर सकते हैं कि–तेरापंथियोंकी ये युक्तियां प्रसंगोचित है ?। जितशत्रु आदि छहों राजे, जिनरिख जिनपाल, इत्यादि ये सब गृहस्थ थे। इन्होंने दुर्गंधी आनेके कारण मूँहपर कपड़ा रक्खा है। मुहपत्तीका तो इन प्रसंगोंमें नामोनिशान भी नहीं है। और यहांपर मुहपत्तीका प्रसंग भी नहीं है। क्या वे

इन प्रसंगोंमें दुर्गंधीके सामने सामायिक या पौषध करनेको बैठे थे, जो तेरापंथियोंके मन्तव्यानुसार मुंहपत्ती बांधे ?।

अगर तेरापंथी, मूँह ढकनेके प्रसंगोंको ही आगे करके अपना बचाव करना चाहते हैं, तो उनको, उतनी दूर २ तक पहुँचनेकी आवश्यकता ही क्या थी ?। यों ही कह देते कि–"जब भंगी लोग, शहरकी टट्टियोंको साफ करके गाडी भरके जाते हैं, तब उनके पास होकर आने जाने वाले सैंकडों लोग मूँहपर कपडा रख करके जाते हैं, इससे सिद्ध हुआ कि–मूँहपर मुंहपत्ती बांधनी चाहिये।"

बस छुट्टीपाई। कैसी उत्तम युक्ति ? ऐसी युक्तियोंको आगे करना, यह भी बुद्धिमत्ताका ही काम है !।

इसी 'मुखवस्त्राधिकार' में आगे चलकरके 'नाक' को 'मूँह' कहलानेके लिये बहुत कुछ प्रयत्न किया गया है। परन्तु यह सब प्रयत्न व्यर्थ ही है। क्योंकि इससे सिद्धि क्या होनेकी है ?।

नाकको 'मूँह' कहते हों, ऐसा हमने कहीं नहीं सुना, न किसी कोशमें भी देखा। देखिये श्रीहेमचन्द्राचार्यने, अपने 'अभिधानचिन्तामणि' कोशके तीसरे काण्डमें पृष्ठ २३३ भी कहा है:—

"तुण्डमास्यं मुखं वक्त्रं लपनं वदनानने" ॥ २३६ ॥

इसमें 'नाक' का तो नाम ही नहीं है। टीकामें भी आचार्यवर्य लिखते हैं:–'मुखे दन्तालयस्तेरं घनं चरं घनोत्तमम्'। दांतके घरको मुख कहते हैं। अब तेरापंथी नाकको कैसे 'मूँह' कहते हैं ?। अच्छा, थोडी देरके लिये हमने मान भी लिया कि–'नाक' को मूँह कहते हैं, लेकिन इससे हुआ क्या ?। दुर्गंधीके कारण 'नाक' ढकनेके प्रसंगसे, मुंहपत्ती बांधे रखना तो किसी तरह सिद्ध

होगा ही नहीं ? । अच्छा, तो साथ साथ तेरापंथी यह भी तो मानते होंगे न, कि जैसे 'नाक' को 'मूंह' कहा जाता है, वैसे 'आंख' और 'कान' को भी मूंह कहना चाहिये । और यदि ऐसे मानोगे तब तो, सुनानेके समय 'मुखसे सुनो' और दिखलानेके समय 'मुखसे देखो' ऐसा ही कहना पडेगा । यह भी बडी अजब गतिकी फिलोसॉफी निकली । तेरापंथियोंकी बुद्धिमानी को, एक-बार नहीं, सहस्रवार धन्यवाद ! ।

अच्छा, तेरापंथियोंकी उपर्युक्त युक्तियां भी 'शशश्रृंग' जैसी ही प्रतीत हुई, अब आगेकी युक्तियोंको देखिये ।

तेरापंथियोंके मुखवस्त्राधिकारकी १९–२० कडीमें कहा है:–

"कर राखे वस्त्रिका, तसु तिखो उपयोग ।
तोपण अटकावत नहिं, तसु मुख खंच भयोग" ॥ १९ ॥
"तिखो नही अटकाव तसु, जतना काजस जोय ।
मुख बांधे मुखवस्त्रिका, तोपण दोष न कोय" ॥ २० ॥

इन दोनों कडियोंमें तेरापंथी क्या स्वीकार करते है, इसको पाठक जरा देखें । जरा तेरापंथी कहते हैं कि–'हाथमें मुहपत्ती रक्खे, उसमें भी कोई अटकाव नहीं है, और मूंहपर बांधे, इसमें भी दोष नहीं' । कैसी मिश्रभाषा ? । यह तो ऐसा ही कथन हुआ, जैसे 'मरीचि' ने कपिलसे कहा था:–'काविला इत्थं पि इहयं पि' अर्थात् 'हे कपिल ! मेरेमें भी धर्म है, और उनमें (ऋषभदेवमें) भी धर्म है ।' इसी तरहसे तेरापथी भी कहते हैं 'हम बांधते हैं, उसमें भी कोई दोष नहीं, और जो हाथमें रख करके उपयोग रखते हैं, उसमें भी कोई दोष नही ।' लेकिन तेरापंथियोंने इस बातका कभी विचार किया है कि मरीचीको, मिश्रभाषणसे कितना भव भ्रमण

करना पड़ा ? मुहपत्तीको हाथमें रखने वाले तो शास्त्रानुकूल रखते हैं, परन्तु मूँहपर बांधने वाले-आप लोग शास्त्रसे प्रतिकूल करते हो, इसका भी तो कुछ विचार करो ।

हम पहले ही कह गये हैं कि—भगवान्‌ने उपयोग पूर्वक बोलनेको कहा है, और जब मुहपत्तीको बांध ही दी, तो फिर उपयोग किस बातका रहा ? दिनभर बडबड करते ही रहो, क्या तकलीफ होती है ? । तकलीफ पडती है उपयोग रखनेमें, जिसमें कि धर्म कहा है । और मुहपत्ती बांधनेवालोंको तो उपयोग रखनेकी आवश्यकता ही नहीं रही । तो फिर उसमें धर्मही कैसे कहा जाय ? ।

तेरापंथी कहते हैं:—

" सूठ तणो जे गांठीओ गणिदेवाद्दि संवाद ।
भोगवणो भूली गया संध्या आयो याद " ॥ २३ ॥
" जाण्युं बुद्धि हिणी पडी लिख्या सूत्र सुखरास ।
वीरनिरवाण गया पछी नवसय एंसीवास" ॥ २४ ॥

बिलकुल ही झूठी बात है। श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण सूंठका गांठिया भूले ही नहीं। तो फिर इस निमित्तसे 'पुस्तकारूढ किया' ऐसा कहना सरासर अपनी अज्ञानताको प्रकट करना ही है । सूंठका गांठिया कानमें रह गया था श्रीवज्रस्वामिको । देखिये श्री वज्रस्वामि—प्रबन्धमें लिखा है:—

" श्लेष्मरोगापनोदायानायद्विश्वभेषजम् ।
उपयुक्तावशेषं च श्रवणे धारयत्ततः ॥ १६८ ॥
प्रत्युपेक्षणकाले तत्तत्रस्थं चापराह्णिके ।
मुखवस्त्रिकयास्लस्यत्कर्णयोः प्रतिलेखने ॥ १६९ ॥
दध्यावायुरहो क्षीणं विस्मृतिर्यन्ममोदिता । "

(प्रभावक चरित्र पृष्ठ ११).

अर्थात्–श्रीवज्रस्वामीने श्लेष्मरोगके कारणसे सूंठ मंगवाई। उसको उपयोगमें लेते हुए जितनी बची, उतनी कानमें रखली। जब सायंकालकी प्रतिलेखना (पडिलेहणा) करने लगे, उस समय मुखवस्त्रिकासे कानोंकी पडिलेहण करते हुए सूंठका गांठिया नीचे गिर पडा। अतएव वज्रस्वामीने विचार किया कि–मुझको ऐसी विस्मृति उदय आई, इससे मालूम होता है कि–अब मेरी आयुष्य क्षीण है।

प्रियपाठक, है यहाँपर पुस्तकाण्डका नामोनिशान भी ?। कहाँ की बातको, कहाँ घुमा करके अपनी इष्टसिद्धि करनेवाले तेरापंथियोंके प्रपंचोंको देखने चाहियें। ऐसे प्रपंचोंमें, सिवाय भोले–अज्ञात लोगोंके और कोई भी नहीं फँस सकता, यह बात भी तेरापंथियोंको अवश्य ध्यानमें रखनी चाहिये।

तेरापंथियोंका यह कहना भी ठीक नहीं समझा जाता है कि–'हमसे उपयोग नहीं रहता, इस लिये बांधते हैं।' क्योंकि–सिर्फ बोलनेके समयमें, मूंहपर मुहपत्ती रखनेका उपयोग नहीं रख सकते हैं, तो फिर पांचों महाव्रतोंके पालनेमें कैसे उपयोग रख सकते होंगे ?। यह एक विचारनेकी बात है। एवं जैसे मुहपत्तीका उपयोग नहीं रख सकते, वैसे ओघेका (रजोहरणका) भी उपयोग क्या रहता होगा ?। कभी चलते फिरते जरूर बगलमें रखना भूल जाते होंगे। और इस न्यायसे तो ओघेको भी कहीं न कहीं बांध करके ही फिरना चाहिये।

प्रियपाठक ! तेरापंथियोंकी चतुराईको देखिये। एक ओर तो तेरापंथी कहते हैं:–" जो लोग यह कहते हैं कि–इस कालमें जैसा चाहिये वैसा चारित्र नहीं पल सकता, यह उनकी भूल है।" जैसे भीखुचरित्रकी तीसरी ढालमें लिखा है:—

"वलसंघयण हीणाकरीरे, पूरो न पाले आचार ।
आगुच जिनजी इम भाषियेरे, इम कईसे भेपधार ॥ ६ ॥"

और दूसरी ओर स्वयं मुहपत्तीको हाथमें रख करके उपयोग पूर्वक बोलनेकी भी शक्ति नहीं रखते है। अब कहाँ रही जैसा चाहिये वैसे चारित्र पालनेकी शक्ति ?। विचारे, उपयोगसे बोलनेकी भी शक्ति रखते नहीं (क्योंकि वे स्वयं स्वीकार करते हैं) तो फिर और बातोंमें क्या उपयोग रख सकते होंगे ? । अस्तु ।

तेरापंथी भाई, अपनी बातको स्थापन करनेके लिये एक और दलीलकोभी पेश करते हैं। वे करते हैं कि-" मुहपत्तीको हाथमें रखनेवाले भी व्याख्यानके समयमें मूँहपर बांधते हैं। जैसे वे एक प्रहरतक बांधते हैं, वैसे हम दिनभर बांधते हैं । "

ठीक है, लेकिन एक बात जरा बुद्धिसे विचारनेकी है। अव्वल तो व्याख्यानमे मुहपत्ती बांधनेका रिवाज, अब उतना नहीं है, जितना पहिले किसी जमानेमें था। लेकिन वह क्यों था ? इसका कारण भी तो खोजना चाहिये । इसका कारण यह था:-

जिस समयमे कागज नहीं बनते थे, उस समयमें शास्त्र ताड-पत्रोंके ऊपर लिखे जाते थे। जिन्होंने ताडपत्रोंकी प्रतियाँ देखी होंगी, उनको मालूम होगा कि-ताडपत्र लंबे तो हाथ हाथ-डेढ डेढ हाथके होते थे, और चौडे तीन या चार आंगुलकी पट्टीके। जब उन ताडपत्रों पर लिखे हुए शास्त्र व्याख्यानमें बांचे जाते थे, तब व्याख्यान करनेवालेको अपने दोनों हाथोंसे उन लंबे पत्रोंको पकडना पडता था। जब दोनों हाथ पुस्तकके ही पकडनेमें रहे, तब मुहपत्तीको कहाँ रखना ?। और विना मुहपत्तीके बोलें, तो भी जीवोंकी विराधना और ज्ञानकी आशातना हो। बस, इसी

कारणसे व्याख्यानके समयमें मुहपत्ती वांधते थे। और वह रिवाज, कारणके नष्ट होने पर भी कहीं कहीं अभी तक चला आता है। लेकिन व्याख्यानके समयमें वांधने वाले भी यह कभी नहीं सिद्ध कर सकते हैं कि—यह शास्त्रानुकूल प्रवृत्ति है। तेरापंथियोंका यह कहना तो सरासर झूठ ही है कि—'व्याख्यानमें एकप्रहर वांधते हैं'। एक प्रहर कभी नहीं वांधते। सारा व्याख्यान ही घंटे डेढ घंटेका होता है, इसमें भी आधा व्याख्यान होनेके वाद मुहपत्तीकी पडिलेहणा करते हैं। उतने समयमें जीवोत्पत्ति भी नहीं होती, जिसका कारण दिखलाकर तेरापंथी दिन भर वांधना स्थापन करते है।

दिनभर मुहपत्तीके बांधे रखनेसे वह बिलकुल थूंकसे गीली (आली) हो जाती है, और इससे उसमें संमूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्ति भी होती है। तेरापंथी कहते है कि—मूँहसे निकले हुए कफमें जीवोत्पत्ति नहीं होती, यह भी विलकुल शास्त्रविरुद्ध ही कथन है। क्योंकि—पन्नवणासूत्रके, प्रथमपद,—पत्र ५५ में इस प्रकारका पाठ है:—

"कहि णं भंते! संमुच्छिममणुस्सा संमुच्छंति? गोयमा! अतो मणुस्सखेत्ते पणयालीसाए जोयणसयसहस्सेसु अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पणरससु कम्मभूमीसु तीसाए अकम्मभूमीसु छप्पन्नाए अंतरदीवएसु गब्भवक्कंतियमणुस्साणं चेव उच्चारेसु वा पासवणेसु वा खेलेसु वा सिंघाणएसु वा वंतेसु वा पित्तेसु वा पूएसु वा सोणिएसु वा सुक्केसु वा सुक्कपोग्गलपरिसाडेसु वा विगयजीवकलेवरेसु वा इत्थीपुरिससंजोएसु वा नगरनिद्धमणेसु वा सव्वेसु चेव असुइएसु ठाणेसु एत्थ णं संमुच्छिममणुस्सा संमुच्छंति"

अर्थः—हे भगवन्! वे संमूर्च्छिम मनुष्य कहाँ उत्पन्न होते हैं?। हे गौतम! ४५ लाख योजन मनुष्यक्षेत्रमें, ढाईद्वीपमें, पनरह कर्मभूमिमें, तीस अकर्मभूमिमें, ५६ अंतरद्वीपमें, गर्भज-मनुष्योंकी विष्ठामें १, पिशाबमे २, कफमें ३, श्लेष्ममें ४, वमनमें ५, पित्तमे ६, राधमे ७, लोहीमें ८, वीर्यमें ९, शुष्कपुद्गलके परिवर्तनमें, १०, जीवरहित कलेवरमें ११, स्त्री–पुरुषके रुधिर-वीर्यके संयोगमें १२, खाल–गटरमें १३, और समस्त अशुचि पदार्थोंमें १४, संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं।

अब, बतावे तेरापंथी, भगवान्के वचनानुसार तुम्हारी मुहपत्ति-योंमे, जो कि दिनभर मूँहपर बाधे रखनेसे आली हो जाती है, समूर्च्छिम जीवोंका उत्पन्न होना सिद्ध हुआ कि नहीं?। अब वे जीव, जो मरेंगे, उत्पन्न होंगे, मरेंगे उत्पन्न होंगे, उसका पाप आपको लगेगा, या उन मुहपत्तियोंको?।

यहाँपर तेरापंथी लोग, एक यह युक्ति आगे करते हैं कि, "जैसे किसीको फोडा हुआ हो, उसपर पट्टीके बांधनेसे उस पट्टीमें जैसे जीवोत्पात्ति नहीं होती, वैसे मूँहपर मुहपत्ती बांधनेसे उसमें भी जीवोत्पात्ति नहीं होती।" लेकिन यह युक्ति ठीक नहीं है। फोडेके ऊपर बांधी हुई पट्टीमें जीवोत्पात्ति नहीं होती, क्योंकि वह पट्टी कसकरके बांधनेसे शरीरकी गर्मीका असर पहुँचता है। परन्तु आप लोग, मुहपत्ती, मूँहपर कसकरके नही बांधते। अतएव खुली रहती है। इससे उष्णताकी असर उसपर नहीं होती। और इसीसे मुहपत्तीमें लगे हुए थूंक-कफमे अवश्य जीवोत्पत्ति होती है।

हम समझते हैं कि–शायद ऐसे अशुचिपदार्थोंमें अशुचिपना नहीं माननेके कारणहीसे तेरापंथी लोग, स्त्रियोंके रजस्वला

धर्मको नहीं मानते है। हमारे ही शास्त्रोंमें नहीं, समस्त धर्मके शास्त्रोंमें यह प्रतिपादित किया गया है कि–शरीरमें किसी जगह भी अशुचिपदार्थ लग जाय, तो उसको साफ करके ही कोईभी कार्य करो। लेकिन तेरापंथियोंको इस नियमसे कुछ भी ताल्लुक नहीं है। उनकी साध्वियें–श्राविकाएं रजस्वला धर्ममें आनेपर भी पढना–लिखना और घरका सब कार्य करेंगीं। बतलाईये, बुद्धिके निर्मल रहनेका है एकभी कारण?। जब रजस्वला धर्म तकको नहीं मानते हैं, तो फिर थूकसे भरी हुई मुहपत्ती मूँहपर बांधे रक्खें, तो इसमें आश्चर्यकी बातही क्या है?।

तेरापंथी, एक इस युक्तिको भी पेश करते हैं कि–" खुले मूँहसे बोलनेमें वायुकायके जीवोंकी हिंसा होती है।" लेकिन यह उन लोगोंकी भूल है। अव्वल तो तेरापंथी इस बातको समझही नहीं सके हैं कि–' खुले मूँहसे क्यों नहीं बोलना चाहिये?।' खुले मूँहसे नहीं बोलनेका खास कारण तो यही है कि– ' सपातिम जीवोंकी रक्षा है, वायुकायकी रक्षा के लिये नहीं। क्योंकि–भाषावर्गणाके पुद्गल चारस्पर्शी होनेसे, आठ स्पर्शी वायुकायके जीव नहीं हणे जाते हैं। तिसपर भी अगर यह मानलें कि– 'भाषावर्गणाके पुद्गलोंके पीछे निकलती हुई हवासे वायुकायके जीव हणे जाते हैं,' तो भी यह तो कभी होही नहीं सकता कि– मूँहपर मुहपत्ती बांधनेमें उनका बचाव हो। मूँहकी हवा तो किसी न किसी द्वारा निकलेगी ही। चाहे नाक द्वारा निकले, चाहे मूँह-द्वारा। यदि मूँहकी हवा बाहर न निकलने पावे, और अन्दरकी अन्दर रूंधी जाय, तो मनुष्य बचे ही नहीं। लेकिन यह तो तेरापंथियोंसे भी नहीं होता; तो फिर मुहपत्ती बांधकर वायुकायके

जीव बचानेका घमंड रखना, है, यह बिलकुल झूठा नहीं तो और क्या ? ।

मुखवस्त्रिकाधिकारके अन्तमें भगवतीसूत्र और दशवैकालिकका प्रमाण देकर यह दिखलानेकी कोशिशकी है कि–'खुले मूँहसे नहीं बोलना चाहिये।' लेकिन इस बातको अस्वीकारही कौन करता है ? । बेशक, खुले मूँहसे नहीं बोलना चाहिये। लेकिन बांधना भी तो नहीं चाहिये। बाधनेके विषयमें किसी सूत्रके प्रमाण दिये होते तो अच्छा होता। खैर, तेरापंथी बांधनेके विषयमें एकभी प्रमाण नहीं दे सकते हैं, परन्तु हम नहीं बांधनेके विषयमें अभी और शास्त्रीय प्रमाण देते हैं।

मुखवस्त्रिकाके, मुहपत्ती, मुहपोतिया, हत्थग, मुहणंतग ये सब पर्यायवाची शब्द हैं। इसी मुखवस्त्रिकाके बांधनेके विषयमें आज तक हमें एक भी प्रमाण न मिला। न कोई मुहपत्तीके बांधनेवाले भी दिखा सकते हैं, जो बात ऊपर के वृत्तान्तसे पाठकोंके समझमें आभी गई होगी।

वास्तवमें देखा जाय तो मुहपत्ती बाधना किसी प्रकारसे सिद्ध हो ही नहीं सकता है। क्योंकि–एक स्थूल बातको देखिये। जिस समय, प्रतिक्रमण या सामायिक करते हैं, उस समय काउस्सग करनेके पहिले, "अन्नत्थ ऊससिएणं, नीससिएणं, खासिएणं, छीएणं, जंभाइएणं," इत्यादि पाठ कह करके इस प्रकारके आगार रखते हैं कि–"यदि काउस्सगमे हमे श्वासोच्छ्वास आवें, खांसी आवे, छींक आवे, बगासा आवे तो हम अपने हाथसे मूँहको ढांकें, इससे हमारा काउस्सग भागे नहीं।"

अब विचारनेकी बात है कि–यदि मूँहपर मुहपत्ती बाधी होती तो, इस प्रकारके आगारोंके रखनेकी आवश्यकता ही क्या थी ?। इससे सिद्ध होता है कि–मुहपत्ती खास हाथमें ही रखनेकी है।

ऐसे ही एक और पाठको भी देखिये। आचारांगसूत्र, द्वितीय श्रुतस्कंधके दूसरे अध्ययनके तीसरे उद्देशेके, पृष्ठ २४७ में इस प्रकारका पाठ है:—

"से भिक्खू वा भिक्खुणी वा ऊससमाणे वा णीससमाणे वा कासमाणे वा छीयमाणे वा जंभायमाणे वा उड्डोए वा वात-णिसग्गे वा करेमाणे पुव्वामेव आसयं वा पोसय वा पाणिणा परिपिहित्ता तओ संजयामेव ऊससेज्ज वा जाव वायणिसग्गं वा करेज्जा।"

अर्थात्:—साधु, साध्वी, संथारा करनेके बाद श्वासोच्छ्वास लेते हुए, खांसी लेते हुए, छींकते हुए, बगासा खाते हुए, उद्गार करते हुए, अथवा वातोत्सर्ग करते हुए, मुख और अधिष्ठानको अपने हाथसे ढांककर, वे कार्य यतना पूर्वक करे।

इससे भी स्पष्ट जाहिर होता है कि—मुहपत्ती, बांधनेके लिये नहीं है। क्योंकि—देखिये, उपर्युक्त प्रसंगपर यदि मुहपत्ती बांधी हुई होती, तो हाथसे मुँह ढकनेको कहते ही क्यों!।

अच्छा, एक और प्रसंगको भी देखिये। जिस समय हरिकेशी मुनि, यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणोंके पास गये, उस समय, ब्राह्मण आपको देखकर इस प्रकार निंदायुक्त वचन बोले:—

"कयरे आगच्छई दित्तरूवे काले विगराले पोकनासे।
उमचेलए पंसुपिसायभूए संकरदूसं परिहरिय कंठे" ॥६॥
(उत्तराध्ययन, अ—१२, पृष्ठ-३५१)

---

१ राजकोटके प्रीन्टींग प्रेसमें छपा, जिसका भाषान्तर प्रो० रवजी देवराजादिने किया है।

अर्थः—अरे! यह बीभत्सरूपवाला, काला, विकराल, बैठी नाकवाला, खराब वस्त्रोंवाला, पिशाचरूप तथा कंठमें सटे हुए वस्त्रोंको पहन करके कौन आता है ?।

ब्राह्मणोंके इस कथनसे हरिकेशीमुनिके वेशका परिचय हो जाता है। यद्यपि ये वचन ब्राह्मणोंने निंदाप्रयुक्त कहे हैं, परन्तु इससे यह तात्पर्य जरूर निकाल सकते हैं कि–'विकराल' शब्दके कहनेसे हरिकेशी मुनिके मुखपर मुहपत्ती बांधी हुई नहीं थी। क्योंकि–संसारके व्यवहारमें यह देखा जाता है कि–'विकराल शब्दका लोग उसी जगह व्यवहार करते हैं कि जहाँ लंबे–मोटे दांत देखे जाँय। 'अनेकार्थसंग्रह' के १२३२ वें श्लोकमें भी 'करालो रौद्रतुङ्गोरुव्रणतैलेषु दन्तुरे' कह करके कराल (विकराल) शब्दका 'दन्तुर' ऐसा दूसरा नाम ही दिया है। और यदि हरिकेशी मुनिके मुख पर मुहपत्ती बांधी हुई होती, तो न उनके दांत देखलाई देने और न 'विकराल' शब्द ही कहते।

इसी उत्तराध्ययनसूत्रके २६ अध्ययनकी २३ वीं गाथाको भी देखिये। यहाँ पर प्रतिलेखनाकी विधिका अधिकार चला है। इसमें कहा हैः—

"मुहपत्तियं पडिलेहित्ता पडिलेहेज्ज गुच्छयं।
गुच्छगलायंगुलिए वत्थाइं पडिलेहए॥" २३॥

[पृष्ठ ७७२]

अर्थात्–मुहपत्तीकी पडिलेहणा करके गुच्छे (पातरोंके बांधनेका ऊनी वस्त्र) की पडिलेहणा करे। फिर अंगुलीमे गुच्छेको रखकरके, झोलीके ऊपर रखनेके पल्लोंकी पडिलेहणा करे।

यहाँपर भी एक विचारनेकी बात है कि-मुहपत्तीकी पडिलेहणाके समय यह नहीं कहा कि-'खोल करके पडिलेहण करे' अथवा 'पडिलेहणकरके बांध ले।' एवं ऐसा भी कहीं नहीं कहा कि-'मुहपत्तीकी पडिलेहणा करनेके समय दूसरी मुहपत्ती मूँहपर बांधले।' दो मुहपतियोंके रखनेकाही निषेध है तो फिर बांधनेका और खोलनेका कहें ही कैसे? अस्तु,

इसी प्रकारसे भगवतीसूत्रके, दूसरे शतकके पांचवे उद्देशे पत्र-१९८ में श्रीगौतमस्वामीके अधिकारमें भी लिखा है कि:—

"तएणं से भगवं गोयमे छट्ठक्खमणपारणयंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, बीयाए पोरिसीए झाणं झियाए, तइयाए पोरिसीए अतुरियमचवलमसंभंते मुहपोत्तियं पडिलेहेइ, पडिलेहेइत्ता भायणाइं वत्थाइं पडिलेहेइ, पडिलेहेइत्ता भायणाइं पमज्जइ, पमज्जइत्ता भायणाइं उग्गाहेइ, उग्गाहेइत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छइत्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ, णमंसइ, वंदइत्ता णमंसइत्ता एवं वयासी"

अर्थः—तब श्रीगौतमस्वामी, छट्ठके पारणेके दिन, प्रथम पोरिसीमें सज्झाय करते हैं, द्वितीय पोरिसीमें ध्यान करते हैं अर्थात अर्थ विचरते हैं और तीसरी पोरिसीमें शनैः शनैः, मनकी अचपलतासे, असंभ्रान्त अर्थात यतनापूर्वक मुहपत्ती की पडिलेहणा करते हैं, पडिलेहणा करके, भाजन (पात्र) तथा वस्त्र पडिलेहते हैं, उनकी पडिलेहणा करके भाजनोंको प्रमार्जते हैं, प्रमार्जन करके भाजनोंको ग्रहण करते हैं, और ग्रहण करके जहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी हैं, वहाँ आते हैं। आकरके श्रमण भगवान् महावीरस्वामीको वंदणा-नमस्कार करते हैं। वंदणा-नमस्कार करके इस प्रकार कहते हैं।

उपर्युक्त पाठमेंभी यह देखनेका है कि–मुहपत्तीकी पडिलेहणा करनेको कहा, परन्तु साथ साथ यह नहीं कहा कि–'मुहपत्ती छोड करके पडिलेहणा करे, और पडिलेहणा करके फिर बांधे ।'

इससे भी हाथमें रखना ही सिद्ध होता है ।

हम पहले कह चुके हैं कि–मुहपत्ती, कई नामोंसे शास्त्रोंमें उल्लिखित है । जैसे मुहपत्ती, मुहपोत्तिया वगैरह । वैसे ही मुहपत्ती का 'हत्थग' नाम भी है । जैसे दशवैकालिकसूत्रके पांचवें अध्ययनकी ८३ गाथामे कहा है:—

" अणुन्नवित्तु मेहावी, पडिच्छन्नंमि संवुडं ।
हत्थगं संपमज्जित्ता, तत्थ भुंजिज्ज संजए" ॥८३॥ पृष्ठ २०९।

अर्थात्—बुद्धिमान् संयत (साधु), गृहस्थकी आज्ञा लेकरके, ढके हुए स्थानमें उपयोग पूर्वक, हत्थगं यानि मुहपत्तीसे (हस्तादि अवयवोको) पूंजकरके उसी स्थानमें आहार करे ।

यहाँ पर 'हत्थग' शब्द मुहपत्तीका पर्यायवाची है । और उसका अर्थ भी 'हाथमें रही हुई' ऐसा स्पष्ट है । इससे भी जाहिर होता है कि–मुहपत्ती हाथमें ही रखनेकी है–मूँहपर बांध रखनेकी नहीं ।

ऊपरके पाठमें 'हत्थग' यानि मुहपत्तीकी पडिलेहणा, आहार करनेके समयकी कही हुई है, उसी प्रकारसे 'ज्ञाता' सूत्रके सोलहवें अध्ययनमें धर्मरुचि अनगारकी कथा चली है । धर्मरुचि अनगार 'नागश्री' नामक ब्राह्मणीके वहाँसे कटुतुंबका शाक ले आए हैं । इनके गुरु श्रीधर्मघोषने कहा है कि–'इसके खानेसे प्राणकी हानि होगी, इस लिये शुद्ध स्थानमें जाकरके परठवणा चाहिये । धर्मरुचि, परवठणेके लिये चले । वहाँ जानेके बाद

उस शाकमेसे एक बिंदु निर्जीव भूमिमें गिराया, तो उसपर, हजारों कीडिएं इकट्ठी हो गई, और मरभी गई। इसको देखकर धर्मरुचिने विचार किया कि–'यदि इस शाकको परठव दूँगा तो बहुत जीवोंकी हिंसा होगी, इस लिये मैं ही इसको खा जाऊं' वस।

" एवं संपेहेइ २ त्ता मुहपत्तियं पडिलेहइ २ त्ता सिसोवरि कायं पमज्जेइ २ त्ता तं सालइयं तित्तकडुयं बहुनेहावगाढं बिल-मिव पण्णगभूएणं अप्पाणेणं सव्वं सरीरकोट्ठंसि पक्खिवइ।"

अर्थात्–ऐसा विचार करके मुहपत्तीकी पडिलेहणा की। पडि-लेहणा करके मस्तक सहित काया पडिलेही। प्रमार्जन करके वह बहुत तेलमे पकाया हुआ कटुतुंबेका शाक, धर्मरुचिने, जैसे बिलमें सर्प प्रवेश करे, वैसे अपने कोठेमें डाल दिया।" (पृष्ठ ११६२)

यहाँ कहनेका तात्पर्य यह है कि–आहार करनेके समय जैसे मुहपत्तिकी पडिलेहणा धर्मरुचिने, की है, वैसे दशवैकालिकके उपर्युक्त पाठमें में भी 'हत्थगं' शब्दसे 'मुहपत्ती' लेनेकी है, न कि दूसरी कोई चीज।

चौदपूर्वधर श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहुस्वामी, कायोत्सर्ग (काउस्सग) किस तरह करना, इन विषयमें आवश्यकनिर्युक्तिके पांचवें अध्ययनमें लिखते हैं:—

" चउरंगुल, मुहपोत्ती उज्जुए डब्बहत्थरयहरणं।
वोसट्टचत्तदेहो काउस्सगं करिज्जाहि ॥ ४९ ॥

अर्थात्–दोनों पैरोंके बीचमें चार अंगुलका अन्तर रख कर खडे रहना, मुहपत्ती दाहिने हाथमें, और ओघा बाये हाथमें रखना, फिर अपने शरीरको वोसराकर कायोत्सर्ग करे।

अब देखिये, यहाँपर भी मुहपत्ती हाथमें रखना ही कहा।

कितने प्रमाण दें। ऐसे अनेकों प्रमाण दे सकते हैं, जिससे कि मुहपत्तीका बांधना न सिद्ध हो। जैनसूत्रोंको पढ जाईये, और बडेबडे धुरंधर आचार्योंके बनाए हुए ग्रन्थोंको देख जाइये। एकभी स्थान ऐसा नहीं मिलेगा कि–मुहपत्ती बांधना सिद्ध हो। जैन शास्त्रोंमें ही क्यो, हिन्दु धर्मशास्त्रोंमें भी जहाँ जहाँ जैनसाधुओंका वर्णन आया है, वहाँ भी किसी जगह यह नहीं लिखा कि–जैनके साधु मूँहबंधे होते हैं। देखिये, शिवपुराणके २१ वे अध्यायमें लिखा है:—

" मुंडं मलिनवस्त्रं च कुंडीपात्रसमन्वितम्।
दधानं पुञ्जिकां हस्ते चालयन्तं पदेपदे "॥ १॥
" वस्त्रयुक्तं तथा हस्तं क्षिप्यमाणं मुखे सदा।
धर्मेति व्याहरन्तं तं नमस्कृत्य स्थितं हरेः " ॥२॥

अर्थः–मुंडे हुए मस्तकवाले, मलिनवस्त्रवाले, काष्ठके पात्र करके युक्त, हाथमें रजोहरणको धारण करनेवाले, पदपदको देखकर चलते हुए, तथा वस्त्रयुक्त हाथवाले, वार २ वह वस्त्रमुखपर रख कर 'धर्मलाभ' इस प्रकारसे बोलते हुए, ऐसे हरिके पास रहे हुए साधुको नमस्कार करके।

उपर्युक्त वृत्तान्तसे जैनसाधुका वेष स्पष्ट जाहिर होता है। यदि मूँह बंधा हुआ होता, तो 'वस्त्रयुक्तं तथा हस्त' कहते ही क्यों? यों ही कहते कि–मूँहबंधा, जैसा कि आजकल ढूंढक–तेरापंथी साधुओंको देखकर लोग कहते है।

इत्यादि अनेकों प्रमाणोंके मिलने पर भी दुराग्रही लोग अपने दुराग्रहको न छोडें, तो इसमें दूसरोंका उपाय नहीं है। वास्तवमें देखा जाय तो मुहपत्ती बांधना किसी प्रकारसे सिद्ध नहीं हो सकता। बल्कि जैनदृष्टिसे कुलिंगपना ही है। और यह कुलिंगपना

मूर्तिपूजाका निषेध करनेवाले लोंकेसेभी नहीं शुरु हुआ था। लोंकेके मत निकालनेके करीब दोसो वर्ष पश्चात् लवजीने यह कुलिंगपना धारण किया। यह बात हम ही नहीं कहते, किन्तु ढूंढकमाध्वी पार्वती, अपनी बनाई हुइ 'ज्ञानदीपिका' नामक पुस्तकके १३ वें पृष्ठमें भी लिखती है कि:—

"इस रीतीसे पूर्वक यति लोकोंकी क्रिया हीन हो रही थी, सोई पूर्वक यतियोंकी लवजी नाम यतिने क्रिया हीन देखकर अनुमान १७२० के सालमें अपने गुरुको कहने लगे कि—तुम शास्त्रोंके अनुसार आचार क्यों नहीं पालते? । तब गुरुजी बोले कि—पञ्चम कालमें शास्त्रोक्त संपूर्ण क्रिया नहीं हो सक्ती, तब लवजी बोले कि—तुम भ्रष्टाचारी हो, मैं तुम्हारे पास नहीं रहूँगा। मैं तो शास्त्रोंके अनुसार क्रिया करुंगा, जब उसने मुखवस्त्रिका मुखपर लगाई और दो चार यतियोको साथ लेके देश देशमें फिरने लगे।"

खैर, इतनी रामकहानीसे अपनेको कुछ ताल्लुक नहीं है। यहाँ देखनेका सिर्फ यही है कि—मुहपत्ती बांधना सं० १७२० से शुरु हुआ है।

लवजी ऋषिने किसीभी कारणसे मूँह बांधना शुरु किया हो, परन्तु हमें तो यही कारण मालूम होता है कि—लवजीके मनमें विचार उत्पन्न हुआ हो कि—"हमारे वडे लोगोंने परमात्माकी मूर्तिको उत्थापन करनेका महान् दुष्कृत्य किया है, तो अब हम लोगोंको उचित है कि-संसारमें किसीको मूँह न दिखावें। क्योंकि संसारमें जो महान् दुष्कृत्य करता है, वह लज्जित होकर किसीको मूँह नहीं दिखाता।"

बस, इसी विचारसे लवजीने मूँहपर मुहपत्ती वांधना शुरू किया मालूम होता है। और यही परंपरा ढूंढियोंमेसे तेरापंथियोंमें भी आजतक चली आई है।

मुहपत्तीके विषयमें बस, इतनाही लिखकर, अब हम तेरापंथियोंके उठाये हुए दया—अनुकंपा के विषयमें कुछ लिखें।

अनुकंपा.

अनुकंपा, एक ऐसी वस्तु है कि–वह संसारके समस्त मनुष्योंके हृदयमें स्वाभाविक ही रही हुई है। जैन, बौद्ध, हिन्दु, मुसलमान, और चाहे इसाई हो, चाहे कसाई, सभीने अनुकंपाको अपने हृदयोंमें स्थान दिया है। इस अनुकंपाको हृदयसे दूर करनेवाले, कुदरतसे युद्ध कर, मानों उसको हरानेकी चेष्टा करते हैं।

जैन धर्मका तो खास सिद्धान्त ही अहिंसा–दया–अनुकंपा है। क्योंकि–दशवैकालिक सूत्रके प्रथम अध्ययनकी प्रथमही गाथामें कहा है:—

"धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा–संजमो तवो।
देवावि तं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो" ॥ १ ॥

इस अहिंसा लक्षण धर्मको माननेका दावा रखनेवालेभी दया-अनुकंपाका निषेध करें, इस जैसा दुःखका कारण और क्या हो सकता है? । यह तो वैसाही हुआ जैसे, 'सलिलादग्निरुत्थिता' पानीमेंसे अग्निका उत्पन्न होना।

जिन लोगोंके लिये यह 'हितशिक्षा' लिखी जाती है, वे (तेरापंथी) 'अहिंसा' को मानते हुए भी अनुकंपाको नहीं मानते हैं, यह उस मतके उत्पादककी बुद्धिके वैपरीत्यका ही परिणाम है। अन्यथा 'अपने हाथसे किसी जीवको न मारना', यही धर्म समझ कर, 'मरते हुए जीवको बचानेमें-रक्षाकरनेमें अधर्म' समझते ही क्यों ?।

'किसी जीवको न मारना' यह अहिंसा, और 'दुःखी जीवोंको दुःखसे मुक्त करना-रक्षा करना, यही दया,' इस प्रकार दोनों शब्दोंकी व्याख्या की जाय, तो कहना होगा कि-तेरापंथी समाजमें दया है ही नहीं। और जिस समाजमें-जिस धर्ममें धर्मकी जड-मूल दया ही नहीं है, वह समाज या धर्म संसार समुद्रसे तारनेको समर्थ हो ही कैसे सकता है ?।

तेरापंथी 'हम अनुकंपा नहीं मानते हैं' 'हम अनुकंपा नहीं मानते हैं' ऐसी पुकार किया करते हैं, परन्तु जब उनसे युक्तियोंके द्वारा पूछा जाता है, तब वे दूसरा कोई उपाय नहीं चलनेसे अनुकंपा-दयाके दो विभाग कर दिखाते हैं। १ सावद्य और २ निरवद्य। जैसे जीतमलजीने, हितशिक्षाके गोशालाधिकारमें, इसीकी पुष्टि करते हुए कहा है:—

"कोइ कहे सावद्य दया, किहां कही छे ताम।
न्याय कहुंछु तेहनो, सुणो राख चित ठाम" ॥७२॥

इससे स्पष्ट होता हैं कि-तेरापंथी सावद्य-निरवद्य दो प्रकारकी दया-अनुकंपा मानते हैं। लेकिन ऐसा माननेमें उन्होंने कितनी भारी भूल की है ? इसको ही प्रथम पाठक देखें।

सम्यक्त्वके पांच लक्षण शास्त्रोंमें दिखलाए हैं:—१ शम, २ संवेग, ३ निर्वेद, ४ अनुकंपा और ५ आस्तिक्य। इन पांचों

लक्षणोंमें चौथा लक्षण 'अनुकंपा' है। अब इस अनुकंपाके यदि दो भेद किये जाँय, तो हम नहीं समझ सकते हैं कि–तेरापंथी, उनके सम्यक्त्वके लक्षणोंमें सावद्य अनुकंपा लेते हैं कि–निरवद्य ?। क्या इसका कहींपर खुलासा तेरापंथी दिखला सकते हैं कि–" यहाँपर निरवद्य ही अनुकंपा लेनी, सावद्य नहीं, अथवा सावद्य ही अनुकंपा लेनी, निरवद्य नहीं ?। अपना कुठार अपनेही पैरोंपर गिरानेका साहस तेरापंथियोंने खूबही किया है। जिस दयासे–अनुकंपासे हम संसारसे पार होनेका विश्वास रखते हैं, उसी अनुकंपा–दयाको संसार समुद्रमें डुबानेवाली समझनेवाले तेरापंथियोंकी बुद्धिको धन्य है!

अच्छा, इसके सिवाय एक यहभी यहाँ प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि–जैसे तेरापंथी, अनुकंपाके दो भेद (सावद्य-निरवद्य) करते हैं, उसी तरह क्या शम, संवेग, निर्वेद और आस्तिक्यके भी भेद करेंगे ?। क्या किसी जैनसूत्रमें तेरापंथी, सम्यक्त्वके पांच लक्षणोंके भेद दिखा सकते हैं ?।

प्रियपाठक! तेरापंथी इस विषयमें क्यों ऐसे भ्रमित हैं, इसका कारण दिखलाना समुचित होगा। वास्तवमें कहा जाय, तो तेरापंथी, शब्दोंके अर्थोंको समझ ही नहीं सके हैं। 'किस शब्दका क्या अर्थ होता है ?' 'अमुक शब्द एकार्थ है कि अनेकार्थ ?' इत्यादि बातोंका ज्ञान उन लोगोंमें थोडी नहीं। यदि होता तो उनके पूज्य जीतमलजी, हितशिक्षाके गोशालाधिकारमें निम्न लिखित बात लिखतेही क्यों? :—

" हेमीनाममालाविषे, आठ दयारा नाम।
दया शुक कारण्य फुन, करूणा घृणा सु ताम ॥ ७३ ॥

कृपा अने अनुकंप फुन, वलि अनुक्रोस कहाय ।
नाम एकार्थ आठ ए, तृतियकांडरे मांहि ॥ ७४ ॥
जिनरिषसामुं जोइओ, रत्नद्वीपनीजेण ।
देवीनी करुणा करी, ज्ञाता नवमे अयेण ॥ ७५ ॥
करुणा नाम दया तणुं, ते माटे सुविचार ।
एह दया सावद्य छे, श्रीजिन आज्ञा वहार " ॥ ७६ ॥

जीतमल्लजीकी बुद्धिमें एक प्रकारका अजीर्णही हुआ, मालूम होता है । नहीं तो ऐसा क्यों लिखते ? । हमने मान लिया कि-कलिकाल सर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्यने, दया–शूक–कारुण्य–करुणा–कृपा–अनुकंपा–घृणा और अनुक्रोश ये आठ नाम अनुकंपाके-दयाके दिखलाये हैं । परन्तु इसका, जिनरिखकी कथाके साथमें संबंध ही क्या है ? । जिनरिखको, रयणादेवीके हावभावसे और पश्चात् रुदनादिके करनेसे उसके ऊपर करुणरस उत्पन्न हुआ है । देखिये, ज्ञातासूत्रके नववें अध्ययनका वह पाठः—

" तएणं जिणरक्खिया समुप्पएण कलुणभावं मच्चुगलत्थणोल्लियमइं अवयक्खतं तहेव जक्खे सेलए ओहिणा जाणिउण सणियं २ उव्विहइ २ णियगपिट्ठाहिविगयसड्ढे, तएणं सा रयणदीवदेवया णिस्संसा कलुणं जिणरक्खियं सकलुसा सेलगपिट्ठाहि उवयंतं दासे मउसित्ति जंपमाणी अप्पत्तं सागर सलिलं गिण्हियवाहाहिं आरसंतं उड्ढं उव्विहइ अंवरतले उवयमाणं च मंडलग्गेण पडिच्छित्ता णीलुप्पलगवलअयसिप्पगासेणं असिवरेण खंडाखंडिं करेंति । " पृष्ठ–९५८–९५९,

अव इस पाठमें, ऊपर दिये हुए आठ नामोमेंसे एक भी नाम नहीं हैं । इसमें जो कोई शब्द देखा जाता है, वह कलुण (करुण)

शब्द है। और इसी 'करुण' शब्द को 'करुणा' समझ करके तेरापंथी सावद्य अनुकंपा–निरवद्य अनुकंपा समझनेकी भूल करते हैं।

'करुणा' शब्द और 'करुण' शब्दका एकही अर्थ समझ लेना, उतनीही भूल है, जितनी नहीं पिताको पिता समझनेकी भूल। करुण शब्दका अर्थ दूसरा होता है, 'करुणा' शब्दका दूसरा। 'करुण' शब्दका, अन्यप्रसंगोंमें उपयोग किया जाता है, 'करुणा' का अन्यप्रसंगोंमें। फिर भी 'करुणा' और 'करुण' को एकही अर्थवाले समझना, अज्ञानता नहीं, तो और क्या ?। यदि 'करुण' शब्दका 'करुणा' ही अर्थ होता तो, प्रभुश्री हेमचन्द्राचार्य उपर्युक्त आठ नामोंके साथ इसको (करुण) क्या न लिखते ?। बल्कि हेमचन्द्राचार्यने तो 'करुण' का उल्लेख दूसरे काण्डके २०८ वें श्लोकमें अलग ही किया है। अगर तेरापंथी करुणा–दया–अनुकंपा वगैरह शब्दोंके अर्थोंमे 'करुण' शब्दकीभी साथमेही खिचडी पकाना चाहते है, तो हमें बतावें, 'कुमारसंभव' के 'विरुजैः करुणस्वैररयम्' इस पदका क्या अर्थ करेंगे ?। क्या यहाँपर भी तेरापंथियोंकी 'सावद्यदया' ही आकर अडंगा लगावेगी ?। कभी नही ?। यहाँपर 'करुण' का कर्थ है 'आर्त्तभाव'। दया–अनुकंपा वगैरह नहीं। इसी तरह सूत्रोंमें भी 'करुण' शब्द अनेक जगहोंपर आता है। जैसे सूयगडांगसूत्रमें:—

"जइ कालुणियाणि कासिया, जइ रोयंति य पुत्तकारणे।"

पृष्ठ-११४, गा० १७।

"मणबंधणेहिं णेगेहिं, कलुणविणीयमुवगासित्ताण।"

पृष्ठ-२२५, गा० ७।

" ते डज्झमाणा कलुणं थणंति, अरहस्सरा तत्थ चिरट्ठितीया।"
पृष्ठ-२७०, गा० ७।

" सया य कलूणं पुण धम्मठाणं, गाढोवणीयं अतिदुक्ख धम्मं।"
पृष्ठ-२७३, गा० १२।

" पक्खिप्प तासु पययंति वाले, अट्टस्सरे ते कलुणं रसंते।"
पृष्ठ-२८२, गा० २५।

" ते डज्झमाणा कलुणं थणंति, उसुचोइया तत्तजुगेसु जुत्ता।"
पृष्ठ-२८६, गा० ४।

" ते सूलविद्धा कलुणं थणंति, एगंतदुक्खं दुहओ गिलाणा।"
पृष्ठ-२८९, गा० १०।

" चिया महंतीउ समारभित्ता, छिज्जंति ते तं कलुणं रसंतं।"
पृष्ठ-२९१, गा० १२।

इत्यादि स्थानोंमें भी क्या तेरापंथी दया–करुणा–अनुकंपा ही अर्थ ठोकते रहेंगे ?। क्या ये अर्थ यहाँपर उचित गिने जा सकते हैं ?। कभी नहीं। तब कहना ही होगा कि–' करुण ' शब्दका अर्थ होता है शोक–आर्तभाव। न कि करुणा–दया वगैरह। और यही अर्थ प्रभुश्रीहेमचन्द्राचार्यने काव्यानुशासनके ७६ पृष्ठमें लिखा है ' शोकः करुणः। '

तेरापथी लोग, इस ' करुण ' और ' करुणा ' शब्दके भेदोंको नहीं समझ करके ही दो प्रकारकी दया–अनुकंपा मानने लग गये हैं। हमें आश्चर्य तो इस बातका होता है कि–जब ऐसे भिन्न २ शब्दोंके भेदोंकोही नहीं समझ सके हैं, तो अनुकंपा–दया–करुणा

इत्यादि एक ही अर्थको कहनेवाले, शब्दोंमें रहे हुए आंतरिक वैलक्षण्यको तो समझते ही कैसे होंगे ? ।

कहनेका मतलब कि–अनुकंपाके रहस्यको समझनेके लिये जितनी शाब्दिक व्युत्पत्तिके ज्ञानकी आवश्यकता है, उतनीही प्रतिभाकी प्रबलताभी चाहियें । टब्बा–टब्बी और भाषा-भूसासे ऐसे विषयोंमें कार्य नहीं चल सकता । किस विषयमें कैसे शब्दोंके प्रयोग करने चाहियें ? अथवा अमुक प्रसंगमें अमुक शब्दका क्या अर्थ होता है, इस ज्ञानको प्राप्त करनेके लिये व्याकरण न्याय–साहित्यादिके अभ्यासकी बहुतही जरूरत है । ऐसे अभ्यासके अभावहीसे तेरापंथी, अनुकंपाके विषयमेंभी भ्रमित हुए हैं, अर्थात् जहाँ मोहरस अर्थ है, वहाँ भी अनुकंपा मान करके वास्तविक अनुकंपाको उठा देते हैं । इस विषयमें विशेष परिचय पाठकोंको आगे चल करके कराया जायगा ।

यहाँ पर एक और बात कह देनी उचित होगी । तेरापंथी कहते हैं कि–हम बत्तीससूत्रोंके मूलपाठोंके सिवाय, न और कोई सूत्र मानते हैं, और न निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका मानते है । ऐसा कहते हुए भी-मानते हुए भी, जब हम इस पन्थकी ' भर्मविध्वंसन ' ' ज्ञानप्रकाश ' वगैरह पुस्तकें देखते है, तब उन पुस्तकोंमें जगह २ सूत्रोंकी टीकाओंका और बत्तीससे अन्य सूत्रोंका भी आश्रय लिया हुआ देखनेमें आता है । अब यह सोचनेकी बात है कि–' ऐसा क्यों ? ' । जब बत्तीस सूत्रोंके मूल पाठोंके सिवाय और कुछ मानतेही नहीं हैं, तो फिर अपनी मतलब निकालनेके लिए इधर उधर भटकनेकी जरूरत ही क्या है ? । लेकिन यह नहीं हो सकता ? । चाहे तेरापंथी हों, चाहे ढूंढिये हों, चाहे पैंतालीस सूत्रोंके माननेवाले भले मूर्तिपूजक ही क्यों न हो,

सभीको टीका वगैरहका आश्रय तो लेना ही पडता है। हम लोगोंकी उतनी बुद्धि-प्रतिभा कहाँ, जो मूलसूत्रोंसे ही, उनके यथार्थ तात्पर्यको निकाल सकें। हम लोगोका उतना ज्ञान कहाँ, कि जो बात, मूलसूत्रोंमें लिखीही न हो, उसको भी अपने आपसे जान लें। तब इसके लिये क्या करना होगा ?। धुरधर ज्ञानी आचार्योंके वचनोको हमें मानना पडेगा, और उन वचनोंपर हमें निर्भर भी रहना होगा। क्या तेरापंथी लोग इस बातको अस्वीकार करेंगें ?। यदि अस्वीकार करते हों तो, हम पूछ सकते हैं कि- 'जिस सीमधरस्वामीको तुम लोग मानते हो, और उनके सामने क्रिया करते हो, उस सीमंधरस्वामीका नाम, बत्तीस सूत्रोंमेंसे किस सूत्रके मूल पाठमें है ?' यह दिखलाओ। यदि बत्तीस सूत्रोंके मूल पाठोंमें कहीं नहीं है, तो फिर क्योंकर मानते हो ?। जिस आर्द्रकुमारकी कथा, श्रावकोंके सामने कह सुनाते हो, उस आर्द्रकुमारकी सारी कथा, तुम्हारे बत्तीससूत्रोंमेंसे किस सूत्रमें है ? इत्यादि कई बातें ऐसी हैं, जो मूल सूत्रोंमें नहीं होनेपरभी मानी जाती है। इससे कहना होगा कि-बत्तीससूत्रोंके मूलपाठोंके सिवाय और किसी चीजके नहीं माननेका जो वे घमंड रखते हैं, सो बिलकुल झूठाही घमंड है। यदि यह घमंड सच्चा होता तो बत्तीस सूत्रोंके सिवाय और सूत्र एवं टीकादिका आश्रय लेतेही क्यों ?।

अब यहाँपर तेरापंथी यह कहते हैं कि-"प्रमाण तो हर किसीके शास्त्रोंके दिये जा सकते हैं, परन्तु इससे उन शास्त्रोंका मानना सिद्ध नहीं होता। इस पर एक दृष्टान्त देते हैं कि-भगवान् महावीरदेवसे, सोमिलने पूछा है कि-सरसव भक्ष वा अभक्ष ? इसके उत्तरमें भगवान्ने कहा है कि, 'ब्राह्मणके शास्त्रोंमें सरसव

दो प्रकारके दिखलाए हैं।' तो क्या ब्राह्मणोंके शास्त्रोंको भगवान्ने मान लिये ?।"

तेरापंथियोंकी यह युक्ति, पानीसे मक्खन निकालने जैसी है। तेरापंथी अभी इस बातको तो समझे ही नहीं हैं कि—दूसरोंके शास्त्रोंके प्रमाण कब दिये जा सकते हैं ?। दूसरोंके शास्त्रोंके प्रमाण तब दिये जा सकते हैं, जबकी वही बात अपने शास्त्रोमे लिखी हुई मिलती हो। भगवान् महावीर देवने दो प्रकारके सरसव ब्राह्मणशास्त्रोंसे दिखलाए, इसका यही कारण है कि—जैनशास्त्रोंमें भी दो ही प्रकारके सरसव माने हुए हैं। यदि जैनशास्त्रोंमें दो प्रकारके सरसव नहीं माने हुए होते, तो भगवान् कभी ब्राह्मणशास्त्रोंका प्रमाण नहीं देते। ब्राह्मणशास्त्रोंके प्रमाणोंकी क्या बात है ? जिस समय हम 'दया' का प्रतिपादन करते हैं, उस समय हम मुसलमानोके धर्मशास्त्रके प्रमाण देते हुए कहते हैं कि—'मुसलमानोंके कुराने-शरीफमें भी लिखा है कि—समस्त जीवोंपर 'रहम' रखना चाहिये।' अब बतलाईये। यदि हमारे जैन शास्त्रोंमे दयाका—रहमका प्रतिपादन न किया होता, तो हम क्या कुराने शरीफका उदाहरण दे सकते थे ?। कभी नहीं। इसी प्रकार 'रात्रिभोजन नहीं करना' इत्यादि विषयोंमें हम हिन्दुधर्मशास्त्रोंके प्रमाण इसी लिये देते हैं, कि—वे बातें हमारे शास्त्रोंमेंभी लिखी हुई पाई जाती हैं। परन्तु हम तेरापंथियोंसे पूंछते है कि—जिन २ विषयोंमें, तुम लोग कभी २ निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि और टीकाओंका आश्रय ले ले करके अपना कार्य चलाते हो, उन २ विषयोंका, तुम्हारे माने हुए किन २ शास्त्रोंमें उल्लेख है ? यह दिखलाओ। जो चीजें तुम्हारे घरमें है ही नही, उन चीजोंके लिये तुम्हारे मन्तव्यानुसार भी तुम कभी दूसरोंका आश्रय नहीं ले सकते हो। हां, सीमंधरस्वामीका

नाम, आर्द्रकुमारकी पूरी २ कथा, इत्यादि वातें, तुम्हारे माने हुए वत्तीससूत्रोंके किसी मूल पाठमें होतीं, और फिर टीका वगैरहका आश्रय लिया होता, तो वह उचित गिना जा सकता था। अस्तु, पराये मालसे पूंजीदार वन वैठनेकी चाल तेरापंथियोंने कैसी सीखी है, यह पाठक स्वयं देख सकते हैं।

यहाँ कहनेका तात्पर्य यह है कि–जैसे हमें सूत्र माननीय हैं, वैसे ही निर्युक्ति–भाष्य–चूर्णि–टीकाए भी मानने लायक ही हैं। और प्रस्तुतमें अनुकंपाका विधान, जैसे मूलसूत्रोंमें है, वैसे निर्युक्ति–भाष्यादिमें भी है। इतना ही नहीं, आचार्योंके वनाए हुए अन्यान्य सैंकडो ग्रंथोंमें भी है। यह वात आगे जा करके पाठकोंको स्वयं विदित हो जायगी।

संसारमें दो प्रकारके मनुष्य होते हैं:–१ लौकिक, २ लोकोत्तर। इन दोनों प्रकारके मनुष्योंको अनुकंपा आदरणीय है। लोकोत्तर पुरुष, जो कि तीर्थंकर हैं, वे भी अनुकंपा, समयपर करते हैं, तो फिर हम–लौकिकपुरुष करें, इसमें तो कहना ही क्या है ?। जैसे समस्त तीर्थंकर एक वर्ष पर्यन्त वार्षिकदान अनुकंपाकी वुद्धिसे ही देते है। तीर्थंकरोंके वार्षिकदानमें सिवाय अनुकंपाके दूसरा कोई कारण नहीं है। देखिये, श्रीमान् हरिभद्रसूरिजी भी आवश्यक वृहद्वृत्तिमें लिखते हैं:—

"करुणागोचरे पुनरापन्नानामनुकंपया दद्यादपि। यतः उक्तं:–

सव्वेहिं पि जिणेहिं दुज्जयजियरागदोषमोहेहिं।
सत्ताणुकंपणट्ठा दाणं न कहिं वि पडिसिद्धं ॥ १ ॥

तथा च भगवंतस्तीर्थंकरा अपि त्रिभुवनैकनाथाः प्रवित्रजिषवः।

सांवत्सरिकमनुकंपया प्रयच्छंत्येव दानमित्यादि।"

(विशेषशतक-पत्र ६ लिखी हुई प्रति)

अर्थात्—करुणा करने लायक मनुष्योको अवश्य अनुकंपासे देना ही चाहिये। क्योंकि-दुर्जय ऐसे राग-द्वेष-मोहको जीतनेवाले समस्त तीर्थंकरोंने सत्त्वानुकंपाके लिये दानका कहीं भी निषेध नहीं किया है। और भगवान् तीर्थंकर भी अनुकंपासे सावत्सरिकदान देते ही हैं।

भीष्मजीने, इसके विषयमें, 'ज्ञानप्रकाश' के पृष्ठ १११ मे, चतुरविचारकी ढालमें लिखा है:—

" कहे लीधा पापमें दीधा धर्म, तिणलेखे रह गया कोरारे।
देवां खने ले मीनषां न दीधां, परिया अणहुंता फोरारे" चं ॥१०८॥

अर्थात्-भगवान्ने वार्षिक दान दिया, इससे भगवान्को कष्ट उठाने पडे।

क्या तेरापंथियोंका यह कथन जरासा भी युक्तियुक्त गिना जा सकता है?। कभी नहीं। वार्षिकदान भगवान् महावीर स्वामीने ही नहीं दिया, किन्तु समस्त तीर्थंकरोंने दिया है। अब तेरापंथी बतलावें, क्या समस्त तीर्थंकरोंको कष्ट हुआ है?। यदि नहीं हुआ, तो फिर यह असद्भूतकलंक भगवान् महावीर देवके ऊपर लगाना, तेरापथियोंके लिये कितना दुष्कृत्य गिना जा सकता है, यह पाठक स्वय विचार कर लें। क्या तेरापंथी, ऐसा किसी सूत्रमें दिखा सकते हैं कि-'भगवान्ने वार्षिकदान दिया, इससे भगवान्को कष्ट हुआ?'। यदि नहीं दिखा सकते है, तो फिर तेरापंथियोंके घरके गपोडोंको कौन सच्चे माननेका साहस कर सकता है?। क्या तेरापंथी, इस बातको नहीं समझते हैं कि-भगवान्का

हृदय दयासे परिपूर्ण था। और जिनका हृदय दयापूर्ण होता है, वे अनुकंपा करनेके समय, गुण-अवगुणोको देखने नहीं बैठते हैं। जैसे कहा भी है:—

" निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः।
न हि संहरति ज्योत्स्ना चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनि "॥ १॥

जैसे चन्द्र, चाण्डालके घरमेंसे भी अपने प्रकाशको नहीं हरण कर लेता है, अर्थात् वहाँ भी प्रकाश डालता है, वैसे सज्जन लोग, निर्गुणी जीवोंपर भी दया अवश्य करते ही हैं।

हमारे लोकोत्तर पुरुषों (तीर्थंकरो) ने, जिन २ वातोंका भव्यजीवोंको उपदेश दिया है, उन २ वातोंका स्वयं भी आचरण कर दिखाया है। परमात्माके चरित्रको अवलोकन कीजिये। जिस चार प्रकारके (दान-शील-तप-भाव) धर्मोंकी परमात्माने परूपणा की है, उन्हीं चार प्रकारके धर्मोंकी, स्वयं आराधना भी की है। जिन क्षान्त्यादि धर्मोंको पालनेके लिये यतियोंको-साधुओंको आज्ञा की है, उन्हीं क्षान्त्यादि धर्मोंका खुद परमात्माने भी आचरण किया है। इसी प्रकारसे जिस अनुकंपा करनेको भगवान्ने फरमाया है, उसी अनुकंपाको आपने भी कर दिखाई है। जैसे देखिये,

परमात्मा महावीर देवने, गोशालेको बचाया। भगवान् पार्श्वनाथने जलते हुए काष्टमेंसे सांप (सर्प) को निकलवाया। भगवान् नेमनाथने, अपने विवाह के समय मारनेके लिये इकट्ठे किये हुए मृगोंको, वचाये। भगवान् शान्तिनाथने मेघरथके भवमें कबूतरको बचाया। इत्यादि बहुत दृष्टान्त मिलते हैं।

यहाँपर भगवान् महावीरदेवके अनुकंपा करनेसे–गोशालेको बचानेसे, तेरापंथी लोग भगवान्को 'चूका' कहते हैं, इसका हम विचार आगे चलकर करने वाले हैं, इस लिये यहाँ कुछ नहीं लिखते। सिर्फ यहाँपर यही कहेंगे कि, भगवान् महावीरदेवने साधु अवस्थामें अनुकंपा करके, समस्त साधुओंको समय विशेषमें अनुकंपा करनेका सूचन किया। भगवान् पार्श्वनाथ, और नेमनाथजीने गृहस्थावस्थामें अनुकंपा करके, समस्त गृहस्थोंको अनुकंपा करनेका रस्ता दिखलाया।

इस प्रकार जब लोकोत्तर पुरुषोंने ही अनुकंपाका आदर किया है, तो फिर लौकिक पुरुषोंके करनेके लिये तो कहना ही क्या?

इस अनुकंपाके विषयमें, परमात्मा महावीरदेवने तो यहाँतक फरमान किया है कि–यदि जीवरक्षाके लिये साधुको अपवादमे मृषावाद भी बोलना पडे, तो कोइ हर्जकी बात नहीं है। जैसे, आचारांगसूत्रके द्वितीयश्रुतस्कंधके, तीसरे अध्ययनके, तीसरे उद्देशेमें इस प्रकारका पाठ है:—

"से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से पाडिपहिया आगच्छेज्जा। तेणं पाडिपहिया एवं वदेज्जा:–आउसंतो समणा, अवियाइं एत्तो पडिपहे पासह, तंजहा–मणुस्सं वा गोणं वा महिसं वा पसुं वा पक्खिं वा सिरीसिवं वा जलचरं वा आइक्खह दंसेह ? तं णो आइक्खेज्जा, णो दंसेज्जा, णो तेसिं तं परिण्णं परिजाणेज्जा, तुसिणीओ उवेहेज्जा, जाणं वा णो जाणंति वएज्जा। तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।" (राजकोटमें छपा, पृष्ठ २७०).

अर्थात्—साधु-साध्वीको ग्रामानुग्राम विचरते हुए, मार्गमें कोई मुसाफिर मिल जाय, और वह पूछे कि, 'हे आयुष्मन् श्रमण! आपने इस रस्तेपर कोई मनुष्य, बैल, भैंसा, अथवा कोई पशु-पक्षी एवं सर्प या जलचर प्राणी देखे हैं तो, कहियें'। तब साधु अथवा साध्वीने इस विषयमें कुछ भी कहना अथवा दिखलाना नहीं। अर्थात् मौन रहना। और यदि कुछ न कुछ जवाब देनेकी जरूरत पड ही जाय, तो जानते हुए भी कह दे कि-'नहीं जानते'।

अब यहाँपर सोचनेकी बात है कि, जानते हुए भी साधु, 'नहीं जानते हैं' ऐसा क्यों कह दे?। ऐसे प्रत्यक्ष झूठ बोलनेके लिये भगवान्ने क्यों आज्ञा दी?। लेकिन नहीं, यहाँपर झूठ बोलनेका साधुका इरादा ही नहीं है, यहाँ इरादा है जीव बचानेका। साधु सोचता है कि-अगर मैं यह कह दूँगा कि-'हां, अमुक प्राणी, इधरको गया, तो वह जरूर उसके पीछे पडेगा और हाथमें आवेगा तो मारेगा भी'। बस, इसी अभिप्रायसे साफ २ कह दे कि-'हमने नहीं देखा।'

यहांपर कई लोग 'जाणं वा णो जाणंति वएज्जा' इस पाठका यह अर्थ करते हैं कि—'जानता हुआ भी साधु, 'जानता हूँ' ऐसा न कहे' अर्थात मौन रहे। लेकिन यह अर्थ ठीक नहीं है। क्योंकि 'तुसिणीओ उवेहेज्जा' यही पाठ मौन रहनेके लिये है, तो फिर दूसरी वार मौन रहनेके लिये क्यों कहे?। तब यह कहना पडेगा कि-यह पाठ खास अपवादके लिये है। अर्थात् प्रथमतो साधु मौन ही रहे। और यदि किसी कारणसे कुछ न कुछ बोलनेकी जरूरत पड ही जाय, तो 'जानता हुआ भी 'नहीं जानता,' ऐसा कह दे। और यही अर्थ सच्चा है। दूसरी बात यह है कि

उपर्युक्त पाठ में 'वा' शब्द रखा हुआ है। और 'वा' शब्द दूसरे अर्थको सूचन करता है। इस लिये यहाँ एक तो मौन रहनेकी बात है, और दूसरी 'जानता हुआ भी, नहीं जानता' ऐसे कहनेकी।

यह बात हम ही नहीं कहते हैं, परन्तु बाईससमुदायके पूज्य श्रीरामचन्द्रजीके बनाये हुए 'सत्यमिथ्यार्थनिर्णय ग्रंथ' के ३७ वें पृष्ठमे भी लिखा है कि—

"भावार्थ यह है कि—देखे हुयेको भी कहते है कि—हमने नहीं देखा। इस पाठका कोई अर्थ करते हैं कि—'मौन रक्खे,' सो शास्त्रका अज्ञान हैं। क्योंकि—इस सूत्रके पछाडीका सूत्र मौन रखनेका अलग है।"

इसी तरह, इसी बाईससमुदायके साधुजी कनीरामजी विरचित, 'सिद्धान्तसार' नामक ग्रंथके, २११ पृष्ठमे भी लिखा है कि—

"कोइ मृगप्रच्छाने समये मृगरक्षाने कारणे जुठुं बोले ते दयाना प्रणामनुं जुठ टालीने बीजा जुठनां माठां फल कह्यां, एटले दयाना प्रणामथी जुठ बोले, तेनां माठा फल कह्या नथी. ए पुरुषना जुठ बोलवाना प्रणाम नथी, पण मृग्यादिकने राखवाना प्रणाम छे ते माटे दयानां फल लागे, पण जुठनां फल न लागे।"

हम उन बाईस समुदायवाले महाशयोंको, जोकि—ऐसे प्रसंगोमें भी झूठके नामसे चमक उठते हैं, उनके ही मजहबके साधुजी कनीरामजी, और श्रीरामचन्द्रजीके उपर्युक्त वचनोंपर ध्यान देनेके लिये अनुरोध करते हैं।

यह कभी न समझा जावे कि—'हम झूठके पक्षपाती है।' हम भी सच्चे सत्यके ही पक्षपाती हैं। परन्तु जहाँ पर भगवान्ने

जैसा बोलनेके लिये फरमाया, वहाँ पर वैसाही बोलना पडेगा। जो महाशय मृगपृच्छादिके कारणमें 'हम नहीं जानते' ऐसे कहनेका निषेध करते हैं, अर्थात् इसको झूठ समझकर गभरा जाते है, उन महाशयोंसे हम पूछते हैं कि—आप सत्य किसको कहते है?। द्रव्यसे (लोक रूढी मात्रसे) जो सत्य है, उसीको परमार्थसे सत्य कहते हो?। ऐसे नहीं हो सकता। क्योंकि, एक मनुष्य काणा है, तिसपर भी उसको 'काणा' कहनेके लिये भगवान् निषेध करते हैं। देखिये दशवैकालिक सूत्रके सातवे अध्ययनमे लिखा है:—

"तहेव काणं काण त्ति पंडगं पंडग त्ति वा।
वाहिअं वा वि रोगित्ति तेण चोरत्ति नो वए॥ १२॥ पृष्ठ-४४०

अर्थात्—साधु, काणेको 'काणा,' नपुंसकको 'नपुंसक,' रोगीको 'रोगी,' और चोरको 'चोर' भी न कहे।

अब बतलाईये, काणेको 'काणा' कहना, नपुंसकको 'नपुंसक' कहना, रोगीको 'रोगी' कहना और चोरको 'चोर' कहना, यह क्या सत्य नही है?। अवश्य सत्य है। परन्तु यह द्रव्यसे सत्य है, भावसे नहीं। और इसी लिये भगवान्ने ऐसा बोलनेके लिये निषेध किया इसी तरह मृगपृच्छादिके कारणमे 'हम नही जानते' यह द्रव्यसे 'असत्य' है, भावसे असत्य नहीं। और इसी लिये ऐसा बोलनेके लिये भगवान्ने आज्ञा फरमाई है।

यह आज्ञा भगवान्ने आचारांगसूत्रमे ही नही फरमाई, अन्य-सूत्रोंमें भी फरमाई है। जैसे देखीये,

सूयगडांगसूत्रके प्रथम श्रुतस्कंधके आठवें अध्ययनमें भी कहा है:—

" पाणे य णाइवाएज्जा, अदिन्नं पि य णादए ।
सादियं ण मुसं बूया एस धम्मे वुसीमओ "॥१९॥ पृष्ठ ३६७

अर्थात्–साधु, प्राणियोंके प्राणोंका नाश न करे, अदत्त ग्रहण न करे और सादिकं, यानि मायाकरके सहित मृषावाद न बोले, संयमवन्त–जितेन्द्रिय साधुका यही धर्म है ।

अब विचार कीजिये । जब यह कहा गया कि–' साधु, माया करके सहित मृषावाद न बोले ' तो इससे ही स्पष्ट सिद्ध होता है कि–मृषावाद बोलनेका और भी कोई तरीका जरूर है । और इसी लिये टीकाकार श्रीमान् शीलांगाचार्यजीने टीकामे स्पष्टीकरण करके कह दिया कि—

" यो हि परवञ्चनार्थं समायो मृषावादः स परिह्रियते। यस्तु संयमगुप्त्यर्थं 'न मया मृगा उपलब्धाः' इत्यादिकः स न दोषायेति।"

अर्थात्–जो परवंचनके लिये माया सहित मृषावाद है, वह त्याग करे, परन्तु संयमकी गुप्ति–संयमकी रक्षा के लिये ' मैंने मृग नहीं देखे ' ऐसा कहा जाय, तो यह दोषके लिये नहीं है ।

बात भी ठीक है, यह मृषावाद अपने स्वार्थके लिये अथवा दूसरोंको ठगनेके लिये नहीं बोला जाता है। किन्तु जीव बचानेकी बुद्धिसे, अनुकंपाके लिये बोला जाता है । इस लिये यह दोषके लिये हो ही नहीं सकता ।

अच्छा, इसी मतलबका दशवैकालिकसूत्रका एक और पाठ भी देख लीजिये । दशवैकालिकसूत्रके चतुर्थ अध्ययनमें दूसरे महाव्रतकी व्याख्यामें कहा है:—

" दव्वओ णामेगे मुसावाए णो भावओ । भावओ णामेगे णो दव्वओ। एगे दव्वओ वि भावओ वि। एगे णो दव्वओ

णो भावओ। तत्थ कोइ कहिंवि हिंसुज्जओ भणइ इओ तए पसुमिणाइणो दिट्ठत्ति?। सो दयाए दिट्ठावि भणइ ण दिट्ठात्ति। एस दव्वओ मुसावाओ, नो भावओ। (श्रीहरिभद्रसूरिकृत टीका पृष्ठ १९०)

अर्थात्–दूसरे महाव्रतकी द्रव्यादि चतुर्भंगी दिखलाते हुए कहाः–१ द्रव्यसे मृषावाद, लेकिन भावसे नहीं। २ भावसे मृषावाद, किन्तु द्रव्यसे नहीं। ३ द्रव्य और भाव दोनोंसे मृषावाद। ४ द्रव्यसे और भाव दोनोंसे मृषावाद नहीं। यहाँपर कोई हिंसक यह कहे कि–आपने मृगादि पशु देखे?। तब, उसने देखे हों, तो भी दयासे यही कहे कि–मैंने नहीं देखे। यह द्रव्यसे मृषावाद है, भावसे नहीं।

इसपरसे भी स्पष्ट सिद्ध हुआ कि–दयाके कारणसे साधु मृषावाद भी बोले, तो वह दोपके लिये नहीं है। और ऐसे प्रसंगोंपर मृषावाद बोलनेकी आज्ञा होनेके कारण हीसे भगवान्‌ने पन्नवणासूत्रके ग्यारहवें पदमें चार प्रकारकी भाषा बोलते हुए भी 'आराधक' कहा। देखिये, पन्नवणासूत्रके ३८८ वें पत्रमें इस प्रकारका पाठ हैः—

"कतिणं भंते! भासज्जाया पण्णत्ता? गोयमा! चत्तारि भासज्जाया पण्णत्ता। तं जहा–सच्चमेगं भासज्जायं, वीयं मोसं भासज्जायं, तइयं सच्चामोसं भासज्जायं, चउत्थं असच्चामोसं भासज्जातं। इच्चेयाइं भंते! चत्तारि भासज्जायाइं भासमाणे किं आराहए विराहए?। गोयमा! इच्चेयाइं भासज्जायाइं आउत्तं भासमाणे आराहए, नो विराहए।"

अर्थात—हे भगवन्! भाषा कितने प्रकारकी है?। हे गौतम! भाषा चार प्रकारकी हैः—१ सत्यभाषा, २ मृषाभाषा, ३ सत्या-

मृषाभाषा, और ४ असत्यामृषाभाषा । हे भगवन् ! इन चारों प्र-
कारकी भाषाको बोलता हुआ साधु क्या आराधक है कि विराधक? !
हे गौतम ! इन चार प्रकारकी भाषाओंको 'आउत्तं' यानि प्रवचन-

मालिन्यादिके कारण विशेषोंमे, लाभालाभको देख करके बोलता
हुआ साधु आराधक है, न कि विराधक ।

अब देखिये, यहाँ भगवान्ने प्रवचनमालिन्यादि कारणोंमे लाभा-
लाभको देखकरके मृषा बोलने वालेको भी आराधक कहा ? ।

अहा ! कैसी दयाकी महिमा ! कैसा अनुकंपाके लिये विधान, ।
जैनसूत्रोंमे, अनुकंपाकी इतनी महिमा होनेपर भी, हम नहीं समझ
सकते हैं कि तेरापंथी लोग क्योंकर इसका निषेध करते हैं ? ।
क्योंकर ऐसा मानते हैं कि 'जीवको मारनेमें एक पाप और
बचानेमें अठारह पाप लगेगे ? ।'

अगर स्थूलबुद्धिसे भी विचार किया जाय, तो मालूम हो सकता
है कि–यदि मारनेकी अपेक्षासे, जीवके रक्षण करनेसे विशेष पाप
होता तो, भगवान् 'पाणाइवायाओ वेरमणं' क्यों कहते ? । 'पाण-
रक्खाओ वेरमणं' ही कह देते । क्योंकि–प्राणातिपातविरमणव्रतसे,
तो, देशसे एक हिंसाका पाप हटेगा, और जीवरक्षाविरमणव्रतसे,
तेरापंथियोंके मन्तव्यानुसार अठारह पाप हटेंगे। लेकिन भगवान्ने
तो ऐसा कहीं भी नही कहा । तो फिर ये तेरापंथी, जीवके बचा-
नेमें अठारह पाप कैसे मानते है ? ।

बात यह है कि–मनुष्यकी बुद्धि जब विपरीत हो जाती है, तब
उसको सत्यासत्यका ख्याल नहीं रहता । वह हरएक बातमें उलटा
ही देखता है । यदि तत्त्वदृष्टिसे विचार किया जाय, तो संसारमे

जितने कार्य किये जाते हैं, उनमें पुण्यपापका आधार खास परिणामके ऊपर रहता है। इसी लिये तो हम पहिले लिख आए हैं कि–परिणामसे बन्ध, क्रियासे कर्म और उपयोगसे धर्म होता है। यों तो संसारकी सारी क्रियाओंमें, फिर वे सांसारिक या धार्मिक ही क्यों न हो, जीवोंकी विराधना रही हुइ है, परन्तु, जिन क्रियाओंमें, जीवविराधना करनेका इरादा न हो, और किसी शुभ कार्यके लिये ही प्रवृत्ति की गइ हो, तो उसमें पापका डर रखना, बिलकुल अज्ञानताका सूचक ही है। यदि ऐसी बातोंमें भी पाप लग जाता तो, भगवान् मृगपृच्छादिके कारण साधुको मृषावाद बोलनेकी आज्ञा देते ही क्यों ?। नदीमें पडी हुई साध्वीको, नदीमें गिरकरके निकालनेको फरमाते ही क्यों ?। कोणिकराजा, बडे आडंबरके साथ, रस्तेमें असंख्याता जीवोंकी हिंसा करते हुए भगवान्को वंदणा करनेके लिये, जाता ही क्यों ?। सुबुद्धिमंत्रि, राजाको प्रतिबोध करनेके लिये, खाईके दुर्गंधी–जीवोंके पिंडवाले जलको घडेमें वारंवार परावर्तन करते ही क्यों?। और मल्लीनाथ भगवान्, जितशत्र आदि छहों राजाओंको प्रतिबोध करनेके लिये सुवर्णकी पोली पुतलीमें छे महीनोंतक आहारके कवल भर २ करके अत्यन्त दुर्गंधवाले पदार्थोंको रख छोडते ही क्यों ?। तब अवश्य कहना होगा कि-यहाँ पर इन लोगोंका अभिप्राय-परिणाम, जीवोंकी विराधना करनेका नहीं था, परन्तु शुभकार्यका ही था। और इससे इन लोगोको, जीवविराधनेका बुरा फल नहीं कहा, किन्तु शुभकार्य करनेका अच्छा ही फल कहा। क्योंकि–परिणाम अच्छे कार्योंके करनेका था।

इसी प्रकार एक विशेष लौकिक दृष्टान्तको भी सुन लीजिये। एक मनुष्य अपने छोटे बच्चेको दोनों हाथोंसे खडे २ खिला रहा

है। अकस्मात् वह लडका हाथोंमेंसे गिरगया, और मरभी गया। अब बतलाईये, उस मनुष्यको क्या सरकार फांसी देगी? कभी नहीं। फांसीतो क्या, किसी प्रकारकी शिक्षा भी नहीं करेगी। बल्कि सरकार उसको दिलासा देगी। क्योंकि–उसका इरादा, लडकेको मारनेका था ही नहीं। यदि इरादे पूर्वक लडकेको मारता तो जरूर फांसीका हुकम होता।

बस, इसी तरह जिसका इरादा जीवोंके बचानेका है, उसको जीवोंके बचानेका ही फल मिलेगा। न कि–जीव बच करके पाप कार्य करेंगे, उसका। जीव बच करके चाहे सो कार्य करें, इससे बचानेवालेको क्या ताल्लुक?।

प्रियपाठक, तेरापंथी जीवको बचानेमें जो पाप समझ बैठे हैं, इसका यही कारण है कि–" वे समझते हैं कि, अगर मरते हुए जीवको बचावेंगे, तो बचनेके बाद वह जीव, जो संसारमें पाप करेगा, उन पापोंकी माला हमारे गलेमें आ पडेगी।" बडी भारी फिलॉसोफी निकाली। जो कार्य, तुम न करोगे, न कराओगे और न अनुमोदन भी करोगे, तो फिर उसका फल तुम्हें आकर कैसे चिपक जायगा?। क्या 'कृतका नाश, और अकृतका आगम' तुम्हारे धर्मप्रवर्तक भिखुनजीने दिखलाया है?। यदि यही तुम्हारी फिलॉसोफी है, तो मरते हुए तुम्हारे साधुको भी न बचाना चाहिये। क्योंकि–वह जीएगा तो खायगा, टट्टी जायगा इत्यादि कार्योंको करेगा, तो उसका पाप बचानेवालेको लग जायगा। वैसे मरते हुए माता या पिताको भी न बचाने चाहियें। क्योंकि–वे जीएंगे तो संसारमें अनेक प्रकारके आरंभ–समारंभ के कार्योंको करेंगे, विषय सेवन करेंगे, लडके–लडकियोंको पैदा करेंगे, ये सब पाप, बचानेवालेको लगेंगे। अच्छा, इतना

ही क्यों ? हम तो कहते हैं कि–यदि ऐसा ही होता तो किसीको साधु भी न बनाना चाहिये। क्योंकि–साधु हो करके, वह देवलोकमें जायगा। वहां अव्रती–अपचक्खानी होगा। इतना ही नहीं, वहाँ देवागनाओंसे भोग भी भोगेगा। तो यह सब पाप भी तेरापंथियोंके मन्तव्यानुसार, दीक्षा देनेवालेको लग जाने चाहियें। और अगर ऐसे ही पाप लगते हों, तो फिर मूँडते ही क्यों हैं ?।

कहना कुछ, और करना कुछ, यह अज्ञानता तेरापंथियोंमें खूब ही देखी। अस्तु, अब इस वृत्तान्तको हम यहाँ ही छोडकर, थोडी देरके लिये, तेरापंथी, इस विषयमें जो कुतर्क करते हैं, उनको ही देखें। पश्चात् जैनसूत्रोंके पाठोंसे और युक्तियोंसे भी अनुकंपाको सिद्ध करेंगे।

पाठकोंको एक बात फिरसे समझ लेनी चाहिये। तेरापंथियोंका यह मन्तव्य है कि–'असंयती जीवोंका न जीना चाहना चाहिये, न मरना। किन्तु तैरना चाहना चाहिये।' जैसे, मद्दाछचन्द वयद लिखित 'जिनज्ञानदर्पण प्रथमभाग' के ८१ वें पृष्ठमें लिखा है:–

"असंजति अव्रती जीवको जीवणो वंछणो के मरणो वंछणो:–असंजतिको जीवणो वंछणो नहीं मरणो वंछणो नहीं, संसारसमुद्रसें तिरणो वंछणो, ते श्रीवीतरागदेव को धर्म छै।"

बस, ऐसा समझ करके ही मरते हुए जीवोंको वे नहीं बचाते। तेरापंथी साधुओंके सिवाय, ससारके समस्त जीवोंको वे 'असंयती' ही मानते हैं। इससे स्पष्ट हुआ कि–सिवाय तेरापंथी साधुओंके, अगर संसारमें रहा हुआ कोई भी जीव मरता होगा, तो उसको बचानेका प्रयत्न वे नहीं करेंगे।

बस, इसी स्वकल्पित सिद्धान्तको पुष्ट करनेके लिये ही, उन्होंने सूत्रोंके पाठोंके अर्थ उलटे किये, अनेकों प्रकारके कुतर्क किये, और यावत् परमात्मा महावीरदेवको भी 'चूके' कह दिये। कितना अनर्थ! कितनी धृष्टता! कितनी अज्ञानता!। जन्मसे ही

तीन ज्ञानों (मति-श्रुत-अवधि) को धारण करनेवाले, दीक्षा के पश्चात् चतुर्थ (मनःपर्याय) ज्ञानसे विभूषित तथा अप्रमत्तसंयमवाले भगवान् तो 'चूक' गये, और भीखमजी, कि जिसके ज्ञानकी पूंजी, इस ग्रन्थके प्रारंभमें ही दिखला दी है, वे न चूके। भगवान् तो भूल गये, और भट्टाचार्य भीखमजीने सही २ कहा।

वाहरे कुपुत्रता! तूने भी संसारके मनुष्यों पर अपना प्रभाव अच्छा ही जमाया है। जिन माता-पिताओने वडे परिश्रम, अतुलित खर्च और अनेकों कष्टोंका सामना करके लडकोंको वडे किये हों, उन्हीं माता-पिताओंको गालियां देनेवाले हजारो कुपुत्र संसारमें देखे जाते हैं, परन्तु संसारमें ऐसे भी स्वयं वनवैठे हुए कुपुत्रोके देखनेका दौर्भाग्य मिला, कि जो जगज्जीवहितावह परमात्मा-परमेश्वरको भी 'चूके' कहनेका दुःसाहस करते है।

अस्तु, हम कहाँ तक अपना अफसोस प्रकट करते रहेंगे?। अभी वहुत कुछ लिखनेका है, अतएव उन तेरापंथियोंके कुतर्कोंको ही प्रथम देखें।

जैसे दो मनुष्य लडते हो, और उनमेंसे कमजोर मनुष्य, वारंवार गालियोंका ही मंगलपाठ करके अपनी जीत दिखलानेका प्रयत्न करता है, वैसे ही तेरापंथी भी, इस अनुकंपाके विषयमें, एकही दृष्टान्तको जहाँ तहाँ खडा कर देते हैं।

तेरापंथियोंने अनुकंपाके निषेध करनेमें एक दृष्टान्त पकड लिया है। वे कहते हैं कि–' एक गृहस्थको पेटमें बहुत दर्द हो रहा है। उस समय साधुजी वहाँ आए। गृहस्थ कहता है कि–आपके, पेटपर हाथ फिरानेसे आराम हो जायगा। लेकिन साधुजी कहते हैं कि–यह हमारा धर्म नहीं। जब गृहस्थको बचानेका धर्म नहीं है, तो बिल्लीसे चूहेको, कुत्तेसे बिल्लीको इत्यादि जीवोंके छुडानेमें कैसे धर्म आ गया ?। '

'विवाहकी वरसी' करनेवाले तेरापंथियोंकी बुद्धिमत्ताको देखिये। कहाँ तो गृहस्थका दृष्टान्त और कहाँ आफतमें आए हुए जीवोंके बचानेका ?।

गृहस्थको पेटमें दर्द हो रहा है, उस दर्दको हटानेके लिये गृहस्थको साधुके पास जानेकी आवश्यकता ही क्या है ?। क्योंकि–उन लोगोंके लिये तो संसारमें वैद्य मौजूद ही हैं। और क्या साधु, वैद्य हैं, जो उनसे रोग मिटानेकी प्रार्थना करे ?। यदि इस तरहसे साधु, रोग मिटाते फिरेंगे, तो किसी समय गृहस्थ उसकी स्त्रीके भी रोगके मिटानेकी प्रार्थना करेगा। फिर तो वे साधु ही काहेको ठहरे? एक प्रकारके वैद्य ही समझ लो न ?। कहनेका मतलब कि–गृहस्थ लोग हजारो उपाय करके रोग मिटा सकते हैं, परन्तु चूहे–बिल्ली वगैरह स्वय बचनेके लिये क्या उपाय कर सकते हैं ?। और एक यह भी बात है कि गृहस्थ, पेटमे दर्द होने के कारण मर ही जायगा, अथवा साधुके हाथ फिरानेसे बच ही जायगा, ऐसा निश्चित ज्ञान क्योंकर हो सकता है ?। और यदि इस प्रकारका ज्ञान साधुको हो भी जाय कि, ' इस मनुष्यके लिये संसारमें दूसरा कोई उपाय नहीं रहा है–अन्य किसी उपायसे ' बचनेवाला

नहीं है, और मेरे हाथ फिरानेसे ही यह बचनेवाला है, तो उस अवस्थामें अनुकम्पाकी बुद्धिसे, साधु हाथ फिरावे और उसको बचावे, तो कोई हर्जकी बात नहीं है। क्योंकि–यहाँ साधुको किसी प्रकारका स्वार्थ नही है। सिर्फ अन्य कोई उपाय न होनेके कारण, अपवाद मार्गमें ऐसा करना पडता है। और इस प्रकार अपवादके समय गृहस्थकी वैयावृत्त्य करनेके लिये शास्त्रकारोंका फरमान भी है। जैसे–न्यायविशारद–न्यायाचार्य श्रीमद्यशोविजयजी उपाध्याय, अपनी बनाई हुई 'द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका' की प्रथम द्वात्रिंशिकामें लिखते हैं कि:—

"वैयावृत्त्ये गृहस्थानां निषेधः श्रूयते तु यः।
स औत्सर्गिकतां बिभ्रन्नैनस्यार्थस्य बाधकः॥ १२॥

अर्थात्—गृहस्थोंकी वैयावृत्त्यमे, जो निषेध सुना जाता है, वह उत्सर्ग मार्ग है। और इससे अपवादमार्गमें कोइ हरकत नहीं आसकती। अर्थात् अपवादमार्गमें इसका निषेध नहीं है।

इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ कि–अपवादके समय साधु, अगर ऐसा कार्य कर भी ले तो कोई हर्जकी बात नहीं है।

बात यह है कि–प्रत्येक कार्यमे परिणाम देखा जाता है। भगवान् महावीरदेवने गोशालेको बचाया, इसमें क्या था?। इसमें भी भगवान्ने अनुकंपाके आनेहीसे गोशालेको बचाया है। देखिये, भगवतीसूत्र, श० १५, उ० १, पत्र १२१७ में कहा है:—

"तएणं अहं गोयमा! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स अणुकंपयणट्ठाए वेसियायणस्स बालतवस्सिस्स सा उसिणतेयलेस्सा तेयपडिसाहरणट्ठयाए एत्थ णं अंतरा अहं सीयलियं तेयलेस्सं णिसिरामि।"

अर्थात्—तब, हे गौतम! मैंने मंखलिपुत्र गोशालकी अनुकंपाके कारण, बालतपस्वी वैश्यायनकी उष्णतेजोलेश्याके तेजको दूर करने के लिये, मैंने शीतलेश्या छोडी।

यहाँ पर भगवान्ने स्वयं श्रीमुखसे फरमाया है कि—'मैंने अनुकंपाके कारण ही गोशालेको बचाया है।' अर्थात् गोशालेको बचानेमें अनुकंपा ही कारण है। और कुछ नहीं।

अब सोचनेकी बात है कि-जब भगवान्ने ही अनुकंपाके कारण जीवको बचाया है, तो फिर हम लोग बचावें, इसमें आश्चर्य ही क्या है?। जब तेरापंथिओंकी यहाँपर एक भी न चली, तब उन्होंने कह दिया कि—'भगवान् चूके'.

तेरापंथीलोग, भगवान्को चूके' दिखलाते हैं, इसका तो हम जवाब आगे जाकर लिखते हैं, परन्तु अभी तेरापंथियोंकी इस विषयमें द्विधावाक् नहीं, अनेकों वाक् दिखलाना उचित समझते हैं।

तेरापंथियोंके 'अनुकंपा राम' की प्रथम ढालकी ११ से १५ कडियोंमें लिखा है:—

" साधां ने लब्ध न फोरणी जी सूत्र भगोती मांय।
पिण मोहकर्मवसराग थी, तिणसुं लिधो गोसालो बचाय॥११॥
छ लेश्या हुंती जद वीरमें जी, हुंता आठोई कर्म।
छद्मस्थ चूका तिण समेजी, मूरख थापे धर्म॥१२॥
छद्मस्थ चूक पर्यो तिकोजी, मूढ आणे बोल।
पिण निरवद्य कोय मजाणज्योजी, सकल हियारी पोल॥१३॥
ज्यूं आणदश्रावकने घरेजी, गोतम बोल्या कूर।
परिया छद्मस्थ चूकमें, सुध हुय गया वीर हजूर॥१४॥
इम अवस उदे मोह आवियोजी, नहीं टाल शक्या जगनाथ।
एतो न्याय न जाणियोजी, ज्यारे मांहे मूलमिथ्यात॥१५॥

है वचनका ठिकाना ? । ऊपरकी पांचों कडियोंमें भिन्न २ कारण दिखलाए हैं । अब इनमेंसे सचा कारण कौनसा मानना ? ।

वास्तवमें देखा जाय तो, गोशालेको बचानेमें उपर्युक्त कारणों-मेंसे एक भी कारण नहीं है, गोशालेको बचानेमें जो कुछ कारण था, वह 'अनुकंपा' ही था । और यह कारण स्वयं भगवान्ने श्री-मुखसे फरमा ही दिया है । यदि उपर्युक्त कारणोंमेंसे कोई एक का-रण होता, तो भगवान् वही कारण दिखलाते ।

इसके सिवाय १४ वीं कडीमें गौतमस्वामी और आणंद श्राव-कका जो प्रसंग उपस्थित किया है, वह भी अप्रासंगिक ही है । क्यों-कि–गौतमस्वामीकी भूल तो स्वयं भगवानने दिखलाई है, और 'मिच्छामि दुक्कडं' दिलवाया, ऐसा लिखा हुआ मिलता है । परन्तु गोशालेको बचानेमें 'भगवान चूके' अथवा 'चूकनेमें मिच्छामि दुक्कडं दिया' ऐसा किसी सूत्रमें लिखा हुआ नहीं मिलता, तो फिर भगवान् और गौतमस्वामीका साम्य क्योंकर किया जा सकता है ? ।

तेरापंथीलोग, अभी तक इस बातको समझे ही नहीं हैं कि–'भगवान्की छद्मस्थ और केवली दोनो अवस्थाओंकी निर्दोष ही क-रणी होती है । और भगवान् वही कार्य करते हैं, जिसमें गुण देखते हैं । अकार्यको कभी भगवान् करते ही नहीं । जब ऐसा ही नियम है, तो फिर तेरापंथी बतावें कि–भगवान्के किये हुए इस कार्यको अकार्य कैसे कहते हो ? । अगर यह कहो कि–'भगवान्में इस कार्यके समय सरागसंयम था, इस लिये भगवान् चूके' । तो यह भी ठीक नहीं है । हमने मान लिया कि भगवान्में सरागसंयम था, परन्तु इससे भी इस कार्यमें 'चूके' नहीं कह सकते हैं । क्योंकि–यद्यपि भगवान् सरागसंयमी थे, तो भी राग–लेश्या

वगैरह जितनी बातें पाई जातीं हैं, वे प्रशस्त ही पाई जातीं हैं, अप्रशस्त नहीं। हम पूछते हैं कि-भगवान्, संयम-तप वगैरहकी आराधना करते हैं, वे सरागपनेसे करते हैं कि-निरागपनेसे?। यदि सरागपनेसे करते हैं, तो फिर इन कार्योंमे भगवान्को 'चूके' क्यों नहीं कहते?। इन कार्योंमें भी भगवान्को 'चूके' कहने चाहिये। अच्छा। भगवान् संयमादि कार्य निरागपनेसे करते हैं, ऐसा तो कह ही नहीं सकते हो। क्योंकि-दशवे गुणठाणे पर्यन्त तो सरागपना रहता ही है। और जब तक सरागपना है, तब तक लब्ध्युपजीवीपना भी रहता है, अर्थात् लब्धि फोरनेका कारण भी रहता है। वीतराग अवस्थामें यह कारण नहीं रहता। इसी लिये तो भगवतीसूत्रके १२१७-१८ पत्रके उपर्युक्त पाठमें, टीकाकारने स्पष्ट खुलासा कर दिया है कि:—

"इह च यद् गोशालकस्य संरक्षण भगवता कृतं तत्सरागत्वेन दयैकरसत्वाद्भगवतः, यच्च सुनक्षत्रसर्वानुभूतिमुनिपुङ्गवयोर्न करिष्यति तद्वीतरागत्वेन लब्ध्यनुपजीवकत्वादवश्यभाविभावत्वाद्वेत्यवसेयमिति।"

अर्थात्-भगवान्ने गोशालेका जो संरक्षण किया है, उसमें भगवान्का 'दयामयपरिणाम ही' कारण है। और जिस समय सुनक्षत्र-सर्वानुभूतीका प्रसंग आया, उस समय भगवान्में वीतरागत्व होनेसे उन दोनोंको बचानेका उन्होंने कुछ भी प्रयत्न नहीं किया। क्योंकि-उस समय लब्धि फोरनेका भी कोइ कारण नहीं रहा था, और भावीभावको भी भगवान् जानते थे कि-ऐसा होनेवाला है। परन्तु जब भगवान् छद्मस्थावस्थामें थे, उस समय कार्यविशेषोमें लब्धिफोरना अपना कर्तव्य समझते थे, और जान बूझ करके ही भगवान्ने गोशालेको बचाया है, तो फिर उसमें भगवान्को 'चूके' कहना

कितनी भारी भूल—महामिथ्यात्वका कारण है ! यह पाठक स्वयं विचार कर सकते हैं।

तेरापंथियोंका यह कहना भी सरासर झूठा है कि—'भगवान्‌ने लब्धि फोरी इस लिये चूके'। भगवान्‌ने अपने स्वार्थके लिये लब्धि नहीं फोरी। अथवा किसी और माया—कपटसे नहीं फोरी। सिर्फ जीवको बचानेके आशयसे ही फोरी है। और इस तरहसे संघादिके कार्योंके लिये साधु अगर लब्धि फोरे, तो उसमें भगवान्‌की आज्ञा ही है। देखिये, भगवती सूत्रके तीसरे शतकके पांचवें उद्देशेमे, पत्र २८१ मे कहा है:—

" से जहा नामए केइपुरिसे असिचम्मपायं गहाय गच्छेज्जा एवामेव अणगारेवि भावियप्पा असिचम्मपायंहत्थकिच्चगएणं अप्पाणेणं उट्ठं वेहासंउप्पएज्जा ? हंता उप्पइज्जा। "

अर्थात्—जैसे कोई पुरुष, ढाल—तलवारको ग्रहण करके जाय, वैसे भावितात्मा—साधु, हाथमें ढाल—तलवारको लेकरके संघादिकके कार्योंके लिये ऊर्ध्व—आकाशमे जावे ? हे गौतम जाय।

अब विचारनेकी बात है कि—यदि साधुको लब्धिफोरनेका निषेधही होता, तो भगवान् यहाँ आज्ञा ही क्यों देते ? इतनी जरूर बात है कि—साधु अन्य किसी स्वार्थी कार्यके लिये लब्धि न फोरे।

जो लब्धिफोरनेकी चर्चा, ऊपर की गई है, उस लब्धिके विषयमें भी तेरापंथियोंके परस्पर ऐसे विरोधी वाक्य मिलते हैं, जिनको देखकर यही कहना पडता है कि—तेरापंथी मतके उत्पादक भीखुनजीमें शास्त्रकी तो गन्ध तक भी नहीं थी। बल्कि भांगकी ठंडाई पी पी करके ही बैठे २ कल्पनाएं की हों, ऐसे प्रतीत होता है। (जैसे

आज कल भी उनके साधु भांगकी ठंडाई लेते हुए, वहुतसे लोगोंके दखेनेमे आते हैं।)

देखिये, भीखमजी, अपनी वनाई हुइ अनुकंपाके रासकी प्रथम ढालमे लिखते हैं:—

'साधांनें लवध न फोरणीजी, सूत्र भगोती मांय।'

विलकुल झूठ वात है। साधुने लब्धि नहीं फोरना, ऐसा भगवती सूत्रमे कहा ही नहीं। हां, यह जरूर कहा है कि—'वैक्रियलब्धि साधु फोरवे, और पश्चात् आलोचना न करे, तो वह विराधक है।' और यही वात, तेरापंथीके पूज्य जीतमल्लजीने अपने वनाए हुए प्रश्नोत्तरके ६ पेजमे लिखी है कि—'भगवती श०—३ उ०४ वक्रियलवधि फोरे तिणन इम कह्यौ वींना आलोया मरे तेहने अराधक (आराधक नहीं विराधक चाहिये) कह्यौ ३।" इन्ही जीतमल्लजीने हितशिक्षाके गोशालाधिकारमें लिखा है:—

"आहारादिक लब्धिफोडवे, कह्यो विराधक ताहि।
भगवती तिजा शतक, तुर्य उदेशक मांहि" ॥ ९७ ॥

जीतमल्लजीने भी यहाँपर भीखमकी तरह गप्पें ही मारी है अपने ही वनाये हुए प्रश्नोत्तरमे और इस गोशालाधिकारमे परस्पर कैसा विरोधी लिख मारा है, इसको पाठक देखे। भगवतीके ३ शतक, ४ उद्देशेमें 'आहारक' लब्धिका नाम नहीं है, वैक्रियलब्धिका प्रसंग है। और वह भी लब्धि फोरने मात्रसे विराधक नहीं कहा, विना आलोचे मरे तो विराधक कहा। और यह वात जीतमल्लजी अपने प्रश्नोत्तरमे स्वीकार भी करते हैं।

इसी प्रकार, इसी तीसरे शतकके चौथे उद्देशेका एक पाठ हमने पहिले देही दिया है, जिसमें यह दिखलाया गया है कि—

संघादिकके कार्यके लिये साधु लब्धि फोरवे तो, उसमें भगवान्की आज्ञा है।

इन सब बातों पर विचार करनेसे 'साधु लब्धि न फोरवे' ऐसा भीखमजीका कहना नितान्त झूठ ही मालूम होता है। यदि लब्धि फोरनेका एकान्त निषेध ही होता, तो आराधक-विराधकका प्रश्न ही क्यों उठता, और संघादिक कार्यके लिये भगवान् आज्ञा ही क्यों देते ?। आराधक-विराधकका विचार तो साधुके लिये हरएक बातमें रहा हुआ है। बहुत लंबा विचार क्यों करें। साधु, सौ कदमके आगे जाय, तो उसको 'इरियावहिया' करनेको कहा, यदि इरियावहिया न करे, और काल कर जाय, तो विराधक कहा। अब बतलाईये, क्या हुआ ?। इससे कोई यह कह सकता है कि-'साधुको, भगवान्ने सौ कदमसे आगे जानेको कहा ही नहीं ?।' कभी नहीं। इसी प्रकार लब्धिके विषयमें भी समझ लेना चाहिये।

इत्यादि बातोंके विचार करनेसे स्पष्ट मालूम होता है कि-भगवान्, गोशालेको बचानेमें किसी प्रकार चूके नहीं हैं। और एक यह भी बात है कि-भगवान् अगर कहीं पर भी चूके होते, तो सूत्रोमे किसी न किसी जगह उल्लेख जरूर होता। और है तो नहीं। बल्कि सूत्रमें तो स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि-'भगवान्, दीक्षित होनेके पश्चात् किञ्चित्मात्र भी पाप सेवन नहीं करते है, न कराते हैं, न करनेवालेकी अनुमोदना करते हैं। जैसे आचारांग सूत्रमें, प्रथम श्रुतस्कंधके, नववें अध्ययनके चतुर्थ उद्देशेमें पृष्ठ १५० में कहा है:—

"णच्चा ण से महावीरे, णो चिय पावगं सयमकासी।
अन्नेहिं वा ण कारित्था, कीरंतंपि णाणुजाणित्था ॥ ८ ॥"

अर्थात्—तत्त्वको जानकरके, महावीरदेवने, स्वयं पाप किया नहीं, कराया नहीं और करनेवालेको अच्छा समझा नहीं है।

इससे स्पष्ट मालूम होता है कि–भगवान्‌ने कोई पाप नहीं किया। अच्छा और देखिये। इसी *आचारांग सूत्रके नववें अध्ययन के चतुर्थ उद्देशेमें पृ० १५२ में कहा है:—

" अकसाती विगयगेही य, सद्दरुवेसु अमुच्छिए झाति।
छउमत्थोवि विपरक्कममाणो ण पमायं सइंपि कुव्वित्था ॥१५॥

अर्थात्–कषायरहित, गृद्धि रहित और शब्दादिक विषयोंमें मूर्च्छा रहित भगवान्, हमेशा ध्यान मग्न रहते थे, और छद्मस्थावस्थामें भी प्रबल पराक्रम करते हुए किसी समय प्रमाद नहीं करते थे।

अब बतावें तेरापंथी, भगवान्‌के नहीं चूकनेके विषयमें अब भी कोई संशयकी बात रही ?। खास आचारांगसूत्रमे ही भगवान्‌की निर्दोपता–अप्रमादता खुल्लंखुल्ला लिखी है, तो फिर अन्य प्रमाणोंकी आवश्यकता ही क्या है ?।

यहाँपर तेरापंथी, एक इस कुतर्कको आगे करते हैं कि–"उपर्युक्त पाठोंमें तो भगवान्‌के गुण कथन किये हैं। गुणकथनमें, अवगुणका वर्णन नहीं हो सकता।" ऐसा कह कर कोणिकका दृष्टान्त देते हैं।

लेकिन इनका यह कुतर्क और दृष्टान्त दोनों ही निरर्थक हैं। क्योंकि, श्रीसुधर्मास्वामीने, अपने आपसे भगवान्‌के गुण वर्णन नहीं किये हैं। जिस प्रकार भगवान्‌ने केवलज्ञान होनेके पश्चात् फरमाया है,

---

* राजकोटमें छपा।

उसी प्रकार गुंथन किया है। भगवान्‌ने छद्मस्थावस्थामें किसी प्रकारका दोषीला कार्य किया होता, तो भगवान् जरूर फरमाते। लेकिन तेरापंथियोंसे हम पूछते हैं कि–'भगवान्‌ने अमुक समय, अमुक अकार्य किया' ऐसा कहीं पर आपके देखनेमें आया हो तो दिखलाईये। भगवान्‌ने तो निष्पक्षपाततासे जिसका जैसा कृत्य देखा-गुण, अवगुण देखा, वहाँ वैसा ही वर्णन किया है। कोणिकके विषयमें भी देख लीजिये।

कोणिकका जीव, श्रेणिकका पुत्र हो करके उत्पन्न हुआ था। कोणिकने, श्रेणिकके प्रति, जो अविनय किया था, इसका तो पश्चात्ताप स्वयं कोणिक इस प्रकार करता है:—

"अहो णं मए अधन्नेणं अपुन्नेणं अकयपुन्नेणं दुट्ठकयं सेणियं रायं पियं देवयं अच्चंपं नेहाणुरागरत्तं निलयबंधणं करे" (निरयावलीसूत्र–पत्र–२४)

कोणिक स्वयं पश्चात्ताप करता हुआ कहता है:—'अहो, अधन्य, अपुण्य, अकृतपुण्य ऐसे मैंने दुष्टकृत्य किया, कि स्नेहानुरागकरके रक्त ऐसे देव समान पिता श्रेणिक राजाको निलय (बेडी) बंधन किया।'

देखिये, कोणिकने स्वयं अपने दुष्कृत्यका–अविनयका पश्चात्ताप किया, यह बात भगवान्‌ने फरमाई, और गणधर महाराजने गुंथन की। अब विचारनेकी बात है कि–मूलवृत्तान्तके साथमें इस बातका ताल्लुक ही क्या है ?। क्योंकि–आचारांगके पाठको यदि भगवान्‌का गुणवर्णन ही समझा जाय, तो ऐसा कोई पाठ तेरापंथी दिखा सकते है कि, जिसमे भगवान्‌की भूल दिखलाई हो। जैसा

कि—कोणिकका अविनय जाहिर किया। कोणिकका ही क्यों, खुद भगवान्के प्रथम गणधर श्रीगौतमस्वामीकी ही भूल जाहिर की है, तो फिर औरोंकी वात ही क्या ? केवली भगवान्के पास किसीका पक्षपात नहीं था।

कहनेका तात्पर्य यह है कि—सूत्रोंमें जो कुछ वर्णन है, वह गणधर महाराजने अपने आपसे गुंथन नहीं कर दिया है। भगवान्ने जैसा फरमाया वैसाही गुंथन किया है। फिर भगवान्ने जैसे गुण दिखलाये, वैसे गुण, और अवगुण दिखलाये वैसे अवगुण। और ये भी भगवान्ने केवली अवस्थामें ही प्रकाशित किये हैं, इसलिये इनकी सत्यतामें अणुमात्र भी संदेह लाया नहीं जा सकता। अब भगवान्की निर्दोषता जैसे सूत्रोंमेंसे मिलती है, वैसें किसी जगह भगवान्के चूकनेका वृत्तान्त देखनेमें नहीं आता, इससे स्पष्ट मालूम होता है कि—तेरापंथियोंका, दया महादेवीसे—अनुकंपासे द्वेष होनेके कारण ही, भगवान्के ऊपर ऐसा असद्भूत कलंक उन्होंने लगाया है।

तेरापंथी कहते हैं कि—" भगवान्ने गोशालेको वचाया, इसमें फायदा क्या निकाला ?। गोशालेने और मिथ्यात्व वढाया, और भगवान्को लोहीठाणा हुआ। गोशाला मरता तो द्रोनोंमेंसे एक भी वात न होने पाती।"

तेरापंथियोंका यह नियम यदि ठीक २ ही है, तो पहिले तो उन तेरापंथियोंको ही चाहिये कि—मरते हुए माता—पिताओंको या लडके लडकियोंको न वचावें। क्योंकि—वे भी तो जी करके अवश्य पाप करेंगे ही।

लेकिन, यह कहो कि–भगवान्‌की उससमय यह दृष्टि नहीं थी कि–गोशालेको बचाऊंगा तो पीछेसे ऐसा अनर्थ होगा ?। भगवान्‌की दृष्टि सिर्फ किसी न किसी प्रकारसे जीवको बचानेकी ही थी। और इसीसे बचाया था। तभी तो हम कहते हैं कि–चाहे कैसा ही संसारमें पापोंको करनेवाला मनुष्य क्यों न हो, परन्तु वह भी अगर दुःखी अवस्थामें हो, तो उसे बचानेके प्रयत्न अवश्य ही करने चाहियें।

कदाचित् कोई यह कहे कि–'भगवान्‌ने गोशालेको स्वीकार ही क्यों किया और बहुश्रुत ही क्यों किया, जो पीछेसे ऐसे अनर्थोंको करनेवाला हुआ।' लेकिन यह कहना भी ठीक नहीं है। क्यों कि, भगवान् परम कृपालु थे। इसी लिये गोशालेको स्वीकृत और बहुश्रुत किया था। और साधु पुरुषोंका कर्तव्य भी यही है कि–दूसरेके हितकरनेमें तत्पर रहना। जैसे कहा है:—

" कस्याऽऽदेशात् क्षपयति तमः सप्तसप्तिः प्रजानां ?
छायां कर्तुं पथि विटपिनामञ्जलिः केन बद्धः ?।
अभ्यर्थ्यन्ते नवजलमुचः केन वा वृष्टिहेतो–
र्जात्यैवैते परहितविधौ साधवो बद्धकक्षाः " ॥ १ ॥

परन्तु पीछेसे गोशाला अपने दौर्भाग्यसे उलटे रस्तेपर चला गया, तो उसमें भगवान् क्या करें ?। और एक यह भी बात है कि–होनहारके आगे किसीका कुछ नहीं चलता। इसी लिये तो हम पहिले कह आए हैं कि–केवली भगवान्‌की प्रवृत्ति भी होनहारके अनुकूल ही होती है। यदि ऐसा न होता तो भगवान्‌ने केवलज्ञान होनेके बाद भी जमालीको शिष्य ही क्यों किया, जो पीछेसे भगवान्‌के शासनमें निह्नव हुआ ?। क्या भगवान् यह नहीं जानते थे कि–'यह निह्नव होगा ?। जानते थे, परन्तु होनहारका प्रतीकार नहीं हो सकता।

कदाचित् कोई यह कहे कि–' भगवान्ने जमालीको दीक्षा नहीं दी थी।' परन्तु यह ठीक नहीं है। जिस समय जमालीके माता–पिताने भगवान्के पास आकर भगवान्से शिष्यकी भिक्षा लेनेके लिये प्रार्थना की है, उस समय भगवान्ने स्वीकृत ही किया है। देखिये भगवती सूत्र, श० ९, उ० ३३ का पाठः—

' तं एसणं देवाणुप्पियाणं अम्हे सीसभिक्खं दलयामो, पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया! सीसभिक्खं, अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं!" (पत्र ८३५)

अर्थात्–' हे देवाणुप्रिय! आपको हम, यह शिष्यभिक्षा देते हैं, इसको आप स्वीकार करें।' पश्चात्, भगवान्ने कहाः– ' यथासुख, प्रतिबंध मत करो।'

बस, इससे स्पष्ट है कि––भगवान्ने जमालीको जरूर स्वीकृत किया था।

देखिये, इसी प्रकार भगवान् ऋषभदेवस्वामीने भी चार हजार पुरुषोंको दीक्षा दी। और वे सबके सब क्षुधावेदनाके परिषहको नहीं सहन करते हुए, भाग गये और गंगाके किनारे तापस हो कर जा बैठे। इतना ही नहीं, उन्हींमेंसे कई लोगोंने पाखंडमत भी चलाए। अब, बतलाईये, इसमें ऋषभदेव भगवान् क्या करें?। भगवान्ने तो उन लोगोंको तारनेके लिये दीक्षा दी थी। पीछेसे, उन लोगोंके दौर्भाग्यसे अनर्थ हुआ, तो इसमें भगवान्का क्या दोष ?। क्या यहाँ भगवान् ऋषभदेवस्वामीको भी चूके कहोगे ?। लेकिन नहीं, दौर्भाग्यके कारण अच्छे मनुष्योंकी बुद्धिमें भी विकार हो जाता है, परन्तु इसमें उपकारी पुरुषोंका दोष नहीं गिना जा सकता है

मनुष्यकी बुद्धिमें जब अजीर्ण होता है, तब उन्हें तत्त्वकी बातके समझनेकी शक्ति जरासी भी नहीं रहती। यही हाल तेरापंथियोंका भी हुआ है। तभी तो वे विना समझे ही ऐसी २ शंकाएं करते हैं कि—

" उपाश्रयमें किसी श्रावकको मृगी आई और वह गिर गया, उसको साधु उठावे नहीं. तो फिर साधुके सामने मालेमेंसे गिरे हुए पक्षीको उठा कर क्यों रक्खे ?। बिल्ली चूहेके पीछे पडी हो, तो उस चूहेको क्यों बचावे ?। जलते हुए मकानमेंसे, किंवाड खोल पशुओंको क्यों निकाले ?। गाडाके नीचे बालक आजाय तो उसको क्यों उठा ले ?। इत्यादि।" (देखो अनुकंपा-रासकी प्रथम ढाल)

इन शंकाओंसे तेरापंथियोंने अपने मतको जाहिर किया कि— 'मालेमेंसे पक्षी गिर पडे तो उसको उठाकर अलग नहीं छोडना चाहिये।' 'बिल्ली चूहेको और कुत्ता बिल्लीको मारता हो, तो उन्हें नहीं बचाने चाहियें।' 'मकानमें पशु जल रहे हों, तो उस मकानका किंवाड नहीं खोलना चाहिये।' 'गाडाके नीचे बच्चा आ जाता हो, तो उसको भी उठाकर अलग नहीं रखना चाहिये।'

तेरापंथियोंकी दया उन्हींको मुबारिक रहे। क्या दुनियामें ऐसी दयावाला धर्म भी कहीं होगा ?। तेरापंथियोंने उपर्युक्त 'गृहस्थ' के दृष्टान्तके साथमें और बातोंका मुकाबला कर, निषेध किया है, यह बडी भारी भूल की है। श्रावकको मृगी आई और वह गिर गया, तो उसको साधु न उठावे, ऐसा कहा किसने ?। अगर उस स्थान-पर कोई गृहस्थ नहीं है, और वह श्रावक बहुत दुःखी हो

रहा है, तो उसको उठानेकी कहीं भी मना नहीं। हमारे साधुओंका हृदय, तेरापंथियोंके जैसा निर्दय नहीं है, कि–वे अपने सामने पडे हुए दुःखी जीवको, अपने धर्मकी रक्षापूर्वक, बचानेका प्रयत्न न करें।

-तेरापंथी कहते है कि—

" मुसादिकने बचावता जी पिनकीने दुःख थाय "

अर्थात्–"बिल्ली चूहेको पकडती हो, तो उस समय यदि चूहेको बचाया जाय, तो बिल्लीको जरूर दुःख होगा। इस लिये उसको नहीं बचाना चाहिये। क्योंकि उसके भोजनमे अंतराय होगी। दूसरा यह भी कहते हैं कि–चूहेको बचानेसे चूहेपर राग और बिल्लीपर द्वेष होगा, इस लिये ऐसे राग-द्वेषका कार्य नहीं करना चाहिये।"

चूहेके नहीं बचानेमें तेरापंथियोंकी, ये दोनों युक्तियाँ निरर्थक ही हैं। देखिये। प्रथम तो बिल्लीको दुःख होनेका कहना ही झूठा है। मनुष्य चूहेको बचावेगा, वह इस अभिप्रायसे नहीं बचावेगा कि, मैं बिल्लीके भोजनको छीन कर उसे कष्ट पहुँचाऊं। चूहेको बचानेवालेका अभिप्राय जीवके बचानेका और बिल्लीको अधिक पापके करनेसे अटकानेका ही है। जैसे, एक विषमिश्रित दूधसे भरा कटोरा पडा है। उसको उठाकर एक अत्यन्त भूखा बालक उसे पीनेका प्रयत्न करने लगा। वहाँ बैठे हुए दुसरे मनुष्यने यदि वह कटोरा छीन लिया, तो कहिये, उस मनुष्यको धर्म होगा या पाप?। और उस मनुष्यको अन्तराय लगेगी या नहीं?। कहना ही होगा कि–उस मनुष्यको पाप नहीं, किन्तु धर्म होगा। अन्तराय नहीं लगेगी, किन्तु जीवके बचानेका महान् लाभ होगा।

उस मनुष्यका यहाँ यह इरादा—अभिप्राय यह नहीं है कि—मैं इस दुग्धको छीनकर बालकको कष्ट पहुँचाऊं। उसका तो इरादा है बालकको बचानेका।

नैतिक रीतिसे भी यहाँ विचार किया जाय तो मालूम हो सकता है कि—बिल्लीका अधिकार ही क्या है, जो चूहे पर इस प्रकारके अन्यायसे आक्रमण करे ?। और ऐसे अन्यायको रोकना, यह क्या सज्जनोंका धर्म नहीं है ?। अवश्य है। सज्जनोंका यह परम कर्तव्य है कि, 'सबल जीव, दुर्बल जीवके ऊपर आक्रमण करता हो—अत्याचार करता हो—अन्याय करता हो, तो उसको रोकनेके लिये यथाशक्ति अवश्य ही प्रयत्न करें।'

दूसरा कारण राग-द्वेषका दिखलाते हैं, यह भी ठीक नहीं है। अर्थात् चूहेको बचानेसे चूहे पर राग और बिल्लीपर द्वेष नहीं होसकता। यहाँ राग—द्वेष होनेका कारण ही क्या है ?। चूहेने कौनसा हमारा कार्य कर दिया है कि जिसने उसपर राग हो। और बिल्लीने कौनसा हमारा कार्य बिगाड डाला है, जिससे हमारा उसपर द्वेष हो। अगर बिल्लीपर हमारा द्वेष ही होता तो, हम, उसी समयमें एक कुत्ता आकर बिल्लीको मारने लगे, तो, उस बिल्लीको क्यों बचावें ?। लेकिन नहीं, उस समय हम बिल्लीको भी बचावेंगे। अब कहाँ रहा राग—द्वेष ?। इस लिये समझना चाहिये कि—जीवोंको जो बचाये जाते हैं, वे रागसे नहीं, किन्तु दयाके परिणामसे—अनुकंपाकी बुद्धिसे। बस, इसी प्रकार जिस अभिप्रायसे, बिल्लीसे चूहेको और कुत्तेसे बिल्लीको बचाये जाते है, उसी अभिप्रायसे गिरे हुए पक्षीको मालेमे रखनेमें, जलते हुए मकानके किंवाडोंको खोल पशुओंको निकालनेमें और गाडके नीचे आए हुए बच्चेको उठाकर अलग रखनेमें

किसी प्रकारकी हानि नहीं, किन्तु लाभ ही हैं। क्योंकि-यहाँ बचानेवालेके ऐसे तुच्छ अभिप्राय नहीं होते है कि पक्षी पशु और बच्चा, ये जीएंगे तो खायगे-पीएंगे-जंगल जाएंगे-विषय सेवन करेगें, वगैरह पापकर्म करेगे इसका पाप हमे लगेगा ?। बचानेवालेका परिणाम जीव बचानेका ही होता है। और जैसा परिणाम होता है, वैसाही लाभ होता है, यह तो पहिले ही कहा जा चुका है।

तेरापंथियोंने, दयाको (!) यहाँतक वढा कर कहा है कि:—

"गिरसतरे लागी लायो, घरवारे नीकलीयो न जायो।
बलता जीव विलविल बोलै साधु जाय किंवार न पोलै"॥१॥

(अनुकंपारास, ढाल-६)

छी छी छी, निर्दयताकी हद आ चुकी। घरमें रहे हुए अनेकों मनुष्य अग्निमे जलनेके कारण चिल्लाहट कर रहे हो, लेकिन साधु मजेसे देखता रहे। कितनी निर्दयता ? कितनी कठोरता ?। ऐसे भी धर्मको, लोग संसारसे पार उतारनेवाला समझते हैं ?। क्याही लोगोंकी मूर्खता ?। भगवान् महावीरदेव, प्रभु पार्श्वनाथ वगैरह तीर्थंकर, कि जिनको यह निश्चय है कि-हमारी इसी भवमें मुक्ति होनेवाली है, वे तो अनुकंपासे जीवोंको बचावे, और इस तेरापंथीके साधु (!) आनंदसे जीवोंको जलते हुए देखें। धन्य है इस पंथको।

तेरापंथियोंने, इस अनुकंपाके विषयमे, ऐसी तो ऊटपटांग बातें, विना समझे लिख मारी हैं, जिनको पढकर बुद्धिमान लोग सिवाय उनपर तिरस्कार करनेके और कुछ नहीं कर सकते।

कहीं तो कह दिया 'यह अनुकंपा आज्ञामें है'। कहीं कह दिया 'यह अनुकंपा आज्ञा बाहर है।' कहींपर मोहके प्रसंगोंको अनुकंपामे ला घुसाये, और कहीं भगवानपर ही चूकनेका कलंक लगा दिया। यही तो अनुकंपाके रासमें पचरंगी पडदे हैं। पहिले अनुकंपा रासकी दूसरी ढालको देखिये। इस ढालमे पहिले तो यही दिखलाया है कि—

" वंछे मरणो जीवणो, तो धर्मतणो नहि अंस।
ए अणकंपा कीधां थकां, वधे कर्मनो वंस " ॥ १ ॥

मंगलाचरण क्याही अच्छा किया ?। जीवका मरना न चाहना यह तो ठीक, परन्तु जीना भी नहीं चाहना ?। अच्छा, तेरापंथी क्या यह भी कुछ कह सकते हैं, कि जीना मरना अपना नहीं चाहना, या दूसरे जीवोंका ?। अगर 'अपना' कहेंगे, तो हमे बतावें कि—रोज खाते-पीते क्यो है ?। बीमार पडते हैं तब दवाई क्यों कराते है ? और टट्टी भी क्यों जाते हैं ?। क्या यह 'जीना नही चाहा ?। अच्छा अगर यह कहा जाय कि—'दूसरे जीवोंका जीना मरना नही चाहना' तो यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि—यदि दूसरे जीवोंका जीना नही चाहते है तो, 'खुले मूँहसे बोलेंगे तो वायुकायके जीव मरेंगे' ऐसा समझ कर मूँहपर पट्टी क्यो बांधते है ?। दालमे मक्खी गिर जाती है, तो उसको निकालते क्यो हैं ?। कपडोमे जूएं पडती है तो उनको धीरेसे निकालकर अलग क्यों रखते है ?। कहिये इन कार्योंमे जीवोंका जीना चाहा कि नहीं ?। यदि जीवोका जीना नहीं ही चाहते हैं, तो फिर जो कुछ होवे सो होने ही देना चाहिये। और प्रयत्नोंके करनेकी आवश्यकताही क्या है ?। बल्कि हम तो यहांतक कह सकते हैं कि—उन लोगोंको चाहिये कि—दयाका नाम तक भी न

हैं। जहाँतक 'दया' का नाम लेते रहेंगे–जीवोंके बचानेके इरादेसे क्रियाएं करते रहेंगे, वहाँतक 'जीवोंका जीना नहीं चाहते' यह कथन वाणीमात्रमें ही समझा जायगा।

आगे चलकर इसी दूसरी ढालमें कई प्रसंगोका विना समझे ही उल्लेख किया है। जैसे:--

"चंपानगरीके वणिकोंका दृष्टान्त देकर, देवताके उपद्रव होनेपर भी अर्हन्नकश्रावकने अनुकंपा नहीं की, ऐसा दिखलाया है।' 'नमिराजऋषिने, इन्द्रके कहनेपर भी जलती हुई मिथिलाके सामने नहीं देखा।' 'केशवके बन्धु गजसुकुमालके सिरपर सोमलने मिट्टीकी पाल बांधी और अंगारे भरे, परन्तु श्रीनेमनाथजीने अनुकंपा नहीं की।' 'भगवान् महावीर स्वामीको देव–मनुष्य और तिर्यंचोंने अनेकों प्रकारके उपसर्ग किये, परन्तु कोई भी इन्द्र, इन उपसर्गोंको दूर करनेके लिये आया नहीं।' 'ढाई द्वीप–समुद्रोंमें मच्छ गलागल हो रही है, अगर भगवान् इन्द्रको कहते तो शीघ्र वह मिटा सकता था, परन्तु भगवान्ने इन्द्रको भी नहीं कहा।' 'चुलणीपियाने पौषध किया, उस समय देवताने आकर अनेक कष्ट दिये, उसके पुत्रोंको, इसके सामनेही तेलमें तले, परन्तु चुलणीपियाने अनुकंपासे उनको बचानेके लिये नहीं कहा।' चुलणीपिया, जब अपनी माताको बचानेके लिये गया, उस समय उसका व्रत भांगा।' 'चेडा और कोणिककी लडाईमें एक क्रोड अस्सीलाख मनुष्य मरे, लेकिन भगवान्ने, अनुकंपा ला करके उनको बचानेके लिये न आप पधारे, और न अपने साधुओंको भेजे और लडाई होनेके पहिले भी मनाई नहीं की।' 'समंदपालको, (समुद्रपाल) चोरके देखनेसे उत्कृष्ट वैराग्य उत्पन्न हुआ, परन्तु उसने चोरपर करुणा नहीं की।"

उपर्युक्त सारे प्रसंग भोले लोगोंको भ्रमित करने के लिये ही तेरापंथियोंने दिए हैं। वास्तवमें इन प्रसंगोंमें जो हकीकतें बनी हैं, उन बातोंको तेरापथियोंने छिपाई हैं। अच्छा, एक एक प्रसंगको अनुक्रमसे देख लीजिये।

ज्ञातासूत्रके ८ वें अध्ययनमें अर्हन्नक श्रावककी कथा चली है। अर्हन्नक चंपानगरीके कई वणिकोंके साथ नावको लेकर देशान्तरोंमें जा रहा है। देवता उसकी धर्म दृढताकी परीक्षा करनेको आया है। देवताके किये हुए पिशाचरूपसे अर्हन्नकको छोडकर सभी वणिक् डर गये है। अर्हन्नकने विचार किया कि— 'इस उपद्रवको दूर करनेके लिये कोशिश करनी चाहिये।' ऐसा विचार करके

" तएणं से अरहण्णए समणोवासए तं दिव्वं पिसायरूवं एज्जमाणं पासइ २ त्ता अभीए अतत्थे अचलिए असंभंते अणाउले अणुव्विग्गे अभिण्णमुहरागणयणवण्णे अदीणविमणमाणसे पोयवाहणस्स एगदेसंसि वत्थंतेणं भूमिं पमज्जइ २ त्ता ठाणं ठायइ २ त्ता करयलजाव तिकट्टु एवं वयासी णमोत्थुणं अरिहंताणं जाव ठाणं संपत्ताणं जइणं अहं एतो उवसग्गओ मुंचामि तो मे कप्पइ पारित्तए अहण्णं जइणं अहं एतो उवसग्गाओ ण मुंचामि तो मे तहा पच्चक्खाएयव्वे तिकट्टु सागारभत्तं पच्चक्खाइ।" (पृ० ७६०–७६१)

अर्थात्—अर्हन्नक श्रमणोपासकने, उस देवके पिशाचरूपको आते हुए देखा। देख करके, अभीत—अत्रासित—अचलित—असंभ्रान्त—अनाकुल—अनुद्वेग, तथा मुखकी आकृति और नेत्रोंका वर्ण बदला नहीं है एवं अदीनमन हो करके, नाव के एक देशमें जाके वस्त्रसे

भूमीका प्रमार्जन करके, उस स्थानपर बैठा। बैठ करके बद्धा-ञ्जलीपूर्वक नमुत्थुणं कहा। कह करके इस प्रकारका अभिग्रह किया कि-' मैं इस उपसर्गसे मुक्त हो जाऊंगा, तो काउस्सग्ग पारूंगा। नहीं तो मुझको सागारिक, भातपानीका पच्चखाण है।

अर्हन्नकने इस प्रकारका अभिग्रह क्यों किया? इस बातको प्रथम सोचना चाहिये। विचार करनेमें यही मालूम होता है कि-यहाँपर अनुकंपाके सिवाय और कोई कारण नहीं था। क्योंकि-अर्हन्नक स्वयं तो धर्ममें दृढ था ही-इसको किसी प्रकारका भी डर नहीं था। फिर भी अनुकंपाके ही कारणसे इस उपद्रवको दूर करनेके लिये इसने ऐसा किया है। तेरापंथी कहते हैं कि-' अर्हन्नकने अनुकंपा नहीं की।' यह उनकी भूल है। क्योंकि, अगर इसने अनुकंपा नहीं की थी, तो बतावें तेरापंथी, इस उपद्रवके होनेके पश्चात् इसको ऐसा अभिग्रह करनेका कारण ही क्या था?।

और, तिसपर भी 'तुष्यतु दुर्जनः' न्यायसे यह मान लें कि-अर्हन्नकने अनुकंपा नहीं की, तो यह कहना होगा कि-यहाँ अनुकंपा करनेका कोई कारण नहीं था। क्योंकि-अर्ह-न्नक यह जानता था कि-' यह मेरी परीक्षा करनेको आया है। और इससे कुछ होनेवाला भी नहीं है। और इसीसे तो अर्ह-न्नक, देवताके उपद्रवको देखकर अपने मनमें विचार करता है:-

"अहण्णं देवाणुप्पिया अरहण्णए णामं समणोवासए अभिगयजीवाजीवे णो खलु अहं सक्का केणई देवेण वा दाणवेण वा जाव निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा तुमण्णं जा सद्धा तं करेही त्तिकट्टु अभीए

जाव अभिण्णमुहरागणयणवण्णे अदीणविमणमाणसे णिश्चले णि-प्फंदे तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए विहरइ।" (पृष्ट–७६५–७६६)

अर्थात्–" हे देवानुप्रिय! मैं अर्हन्नक श्रावक हूं। जीवा-जीवादिपदार्थोंको जानता हूँ। मुझको, कोई भी देव–दानव, निर्ग्रंथ प्रवचनके–सिद्धान्तसे चलाय मान करनेके लिये समर्थ नही है। अथवा न क्षोभित करनेके लिये समर्थ है और न विपरिणामी बनानेके लिये समर्थ है। अतएव तेरेको जो करना होवे सो कर।"

" इस प्रकार कह करके, जिसने अपने मुखका रंग बदला नही है, दीनमन किया नहीं है, ऐसा अर्हन्नक, निश्चलरूपसे अपने शरीरके अंगोंको नहीं हिलाता हुआ धर्मध्यानमें स्थित रहा।"

अब इस पाठ परसे विचारनेकी बात यह है कि–अर्हन्नकके मनमें निश्चय था कि–इस देवतासे कुछ भी होनेवाला नहीं है। अर्ह-न्नकको जब देवताने यह कहा कि–' तू अपने धर्मको छोड दे, नहीं तो मैं तेरी नावको डुबा दूंगा' तभीसे वह जान गया कि–' यह देवताकी झूठी ही करतूत है, करने–धरनेका कुछ नहीं है।' फिर वह अपने धर्मको छोड करके देवतासे क्यों प्रार्थना करे कि–' तू इन लोगोको मत मार'। हम तेरापंथियोंसे पूछते हैं कि–' क्या देवताने उन वणिकोंको मार डाले हैं?।' बिलकुल नहीं। अर्हन्नकने जैसा विचार किया, उसी प्रकारसे उन वणिकोंकी जरासी भी हानी नहीं हुई। और वे सबके सब जहाँ जाना था, वहाँ पहुँचे हैं। देखिये उस पाठको:—

" तए णं से अरहण्णए समणोवासए णिरुवसग्गेत्तिकट्टु पडिमं पारेइ तएणं अरहण्णगपामोक्खा जाववाणियगा दक्खिणाणुकुलेणं वाएणं जेणेव गंभीरपोयपट्टणे तेणेव उवागच्छइ–"
(पृष्ठ ७७३–७७४)

अर्थात्–इसके बाद अर्हन्नक श्रावकने, निरुपद्रव हो करके काउस्सगको पारा, पश्चात् अर्हन्नक प्रमुख वणिक् दक्षिणदिशाके अनुकूल वायुसे जहाँ गंभीरपोतपट्टन है, वहाँ आते हैं।

इससे स्पष्ट जाहिर होता है कि–उन वणिकोंको कुछ भी हानी नहीं हुई है। अब यहाँपर अनुकंपा करनेका कारण ही क्या है, जो तेरापंथी लंबी २ कुलाँचे मारते हैं ?।

हमारा तो यह भी कहना है कि– अनुकंपा भी की जाती है, तो वह अपने धर्मकी रक्षा पूर्वक की जाती है। अनुकंपा ही क्यों ! जितने संसारमे अच्छे कार्य है, वे भी, अपने धर्मको रख करके ही किये और कराये जाते है। हम पूछते है कि–तेरापंथीके साधुको कोई यह कहे कि–' आप एक घंटेभरके लिये मेरी पगड़ी पहनलें, तो मै लाख सामायिक करूं '। क्या तेरापंथीके साधुजी इस कार्यको करना मंजूर करेंगे ? अथवा कोई गृहस्थ, तेरापंथी साधुसे यह कहे कि–' आप एक ही साधु गृहस्थ बन जाँय, तो, हम सौ आदमी दीक्षा लें। ' क्या तेरापंथीके साधु इस बातको स्वीकार करेंगे ?। अथवा एक ऐसा ही दृष्टान्त ले लीजिये कि, जैसे कोई स्त्री तुम्हारे साधुजीसे यह कहे कि–'आप मुझसे विषय सेवन कीजिये, नहीं तो मै मर जाऊंगी '। कहिये साधुजी इस बातको स्वीकार करेंगे ?। कभी नहीं। इससे स्पष्ट जाहिर होता है कि–अनुकंपादि अच्छे कार्य भी स्वधर्मकी रक्षापूर्वक ही किये जाते हैं।

अर्हन्नकको तो यहाँपर यह भी प्रसंग नहीं था। यहाँ तो केवल देवताका उपद्रव, अर्हन्नकको धर्मसे चूकानेके लिये था। और अर्हन्नक इस बातको अच्छी तरह जानता भी था। तो फिर क्यों धर्मसे चूके, और प्रार्थना करे।

दूसरा उल्लेख है नमिरायऋषिका। नमिराजा, अपनी मिथिला नगरी-राज-पाट-अन्तेउर वगैरह सबको छोड कर साधु हो गया। इसको संसारके किसी पदार्थपर अब ममत्व नहीं है। राजाके साधु हो जानेसे, सारी नगरीके लोग रुदन कर रहे हैं, इनको देख, नमिरायकी दृढताकी परीक्षा करनेके लिये इन्द्र, ब्राह्मणके वेषमें नमिरायऋषिके पास आया। इन्द्रने इसको चलायमान करने के लिये कहा है:—

" एस अग्गी य वाउ य एयं डज्झइ मंदिरं।
भयवं अंतेउरं तेणं कीसाणं नावपेक्खहि " ॥१२॥
" एयमट्ठं निसामित्ता हेऊकारणचोईओ।
तओ नमीरायरिसी देविंदं इणमब्बवी " ॥१३॥
" सुहं वसामो जीवामो जेसिं मो नत्थि किंचणं।
महिलाए डज्झमाणीए न मे डज्झइ किंचणं " ॥१४॥
" चत्तपुत्तकलत्तस्स निव्वावारस्स भिक्खुणो।
पियं न विज्जए किंचि अप्पियंपि न विज्जए " ॥१५॥

(उत्तराध्ययन सूत्र, पृष्ठ—२८३—२८४)

अर्थात्—हे भगवन्! यह अग्नि और वायु दिख रहे हैं। यह मंदिर जल रहा है। अंतेउर जल रहा है। आप सामने क्यों नहीं देखते हैं?।'

इन्द्रके, इस प्रकार कहनेपर, इस अर्थको सुन करके, नमिराय-ऋषिने, इन्द्रसे कहाः—" मैं सुखसे रहता हूँ। मेरी कुछ भी वस्तु नही है। मिथिला नगरीके जलनेसे मेरा कुछ नहीं जलता है। क्योंकि-जिसने पुत्र-कलत्रको छोड दिये हैं, ऐसे निर्व्यापार साधुको न तो कोई प्रिय है, और न कोई अप्रिय।"

अब, इस प्रसंगको विचार लीजिये। तेरापंथी यह कहते हैं कि-" इन्द्रने नमिऋषिसे यह कहा कि-'आप मिथिलाके सामने देखें तो वह जलती हुई शान्त हो जाय।' लेकिन ऐसा इन्द्रने कहा ही कहाँ है?। इन्द्रने तो यही कहा है कि-'आप सामने क्यों नहीं देखते?।' तब उन्होंने कहा है कि—'मेरा कुछ है ही नहीं, तो मैं क्यों सामने देखुं?।' अब, यहाँ अनुकंपाकी बातही क्या है। इन्द्र, नमिरायऋषिके मोहकी परीक्षा करता था, नकि यहाँ अनुकंपाका कोई कारण था। और वास्तवमें देखा भी जाय तो, जब नमिरायऋषि, संसारके समस्त पदार्थोंपरसे मोहको हटा करके साधु हो गए, तो फिर उनके संबंधियोंके रुदनसे अथवा मोहजन्य और चेष्टाओंसे उन्हें सामने देखनेकी आवश्यकता ही क्या थी?। नमिरायऋषिकी ही क्यों बात करनी चाहिये?। आज कलके जमानेमें भी बहुतसे मनुष्य संसारसे निर्मोही होकर साधु हो जाते हैं, उस समय, उनके पीछे अनेकों मनुष्य अनुकूल उपसर्ग करते हैं, लेकिन उन उप-सर्गोंके सामने देखते ही नहीं हैं, तो क्या इससे अनुकंपाका निषेध हो गया?। कभी नहीं, ऐसे प्रसंगोंमें अनुकंपाका कारण ही क्या है?।

तेरापंथियोंने जितने प्रसंगोंको आगे किये हैं, वे सब ऐसेके ऐसे ही हैं। बिचारे भोलेलोग, कि जिनको इन वृत्तान्तोंसे

थोडा भी परिचय नही है, वे, ऐसी अधूरी २ बातोंसे भ्रमित हो सकते हैं। खैर, अभी और आगे बढिये।

गजसुकुमाल, जिस समय प्रतिमासाधन करनेके लिये स्मशानभूमीमें गये हैं, उस समय, सोमलब्राह्मणने उनके सिरपर मिट्टीकी पाल बांधी और अंगारे भरे। यहाँपर नेमनाथ भगवान्को अनुकंपा करके साधुओंको भेजनेकी कोई आवश्यकता थी ही नहीं, यह बुद्धिमान् लोग स्वयं विचार सकते है। क्योंकि—नेमनाथभगवान् भावीपदार्थोंको अच्छी तरह जानते थे। जब वे स्वयं केवलज्ञानसे जानते थे कि—गजसुकुमाल, इसी निमित्तसे ध्यानमे आरूढ हो कर कर्मोंको क्षय करनेवाले है, तो फिर वे इस उपद्रवको निवारण करनेके लिये भेजे ही क्यों ?। ऐसी प्रवृत्ति तो हम लोगोंको करनेकी है कि, जिनको भविष्यमें क्या होगा, इसका ज्ञान नही है। इस लिये यह प्रसंग भी स्थानोचित नही है।

'भगवान् महावीर देवको अनेकों उपसर्ग हुए, उस समय कोई भी इन्द्र, अनुकपा करके रक्षा करनेके लिये नहीं आया।' यह भी कहना ठीक नहीं है। भगवान् महावीर देव, संसारके समस्त जीवोपर अनुकपा करते थे। जिन्होंने चारज्ञानोंको धारण करके समस्त कर्मोंको क्षय करनेके लिये कमर कसी थी, जिनको उपद्रवोंका सामना करके ही कर्मोंका क्षय करना था और जो इसी अभिप्रायसे ही ऐसे प्रसंगोको प्राप्त करते थे, उन परमात्माकी हम जैसे पामर जीव क्या अनुकंपा कर सकते हैं ?। क्या तेरापंथियोंको इस बातका ख्याल ही नहीं है कि—तीर्थंकर देव किसीकी अपेक्षा नहीं करते हैं ?। क्या तेरापंथियोंने यह कभी पढा है कि—जिस समय परमात्मा महावीर देवको उपसर्ग होने लगे,

उस समय, इन्द्रने आकरके प्रार्थना की है कि—'हे भगवन् ! आपको बारह वर्ष पर्यन्त उपसर्ग होनेवाले हैं, इस लिये मैं उनको निवारण करनेके लिये आपकी सेवामें रहूँ।' भगवानने उस समय साफ साफ कह दिया है कि–' अर्हन् दूसरोंके सहायकी जरासी भी अपेक्षा नहीं रखते।' देखिये, कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचंद्राचार्य, अपने योगशास्त्रके प्रथम प्रकाशमें इसी मतलबको कहते हैं:—

" तत प्रदक्षिणीकृत्य त्रिमूर्ध्ना प्रणिपत्य च ।
इति विज्ञापयाञ्चक्रे प्रभुः प्राचीनबर्हिषा " ॥ ७३ ॥
" भविष्यति द्वादशाब्दान्युपसर्गपरम्परा ।
तां निषेधितुमिच्छामि भगवन् पारिपार्श्विकः" ॥७४॥
" समाधिं पारयित्वेन्द्रं भगवानूचिवानिति ।
नापेक्षाञ्चक्रिरेऽर्हन्तः परसाहायिकं क्वचित् " ॥७५॥

(पृष्ठ–१०)

इन श्लोकोंका सार ऊपर देही दिया है। इस परसे स्पष्ट जाहिर होता है कि–भगवान् किसीकी सहायताकी अपेक्षा नहीं रखते हैं। हा, यहाँपर अनुकंपाका विषय तो तब गिना जाता, जब कि–भगवान्ने इन्द्रकी सहायता चाही होती, और इन्द्रने, अनुकंपामें पाप समझ करके मुँह मोड लिया होता। लेकिन यह तो हुआ नहीं। इन्द्र तो भक्ति करनेके लिये आया ही था, और भगवान्ने, अपने ही पुरुषार्थसे कर्मक्षय करनेके लिये इन्द्रको निषेध कर दिया था। फिर इस प्रसंगकी यहाँ आवश्यकता ही क्या थी ?।

सारे द्वीपसमुद्रोंमें, मच्छगलागल हो रही है, उसको बंध करनेके लिये भगवान्ने इन्द्रको नहीं कहा, इसमें भी यही कारण

है कि–भगवान् भाविभावको सम्यक्प्रकारसे जानते थे, और तदनुकूल ही उनकी प्रवृत्ति होती थी। भाविभावमें, अर्थात् जैसी होनहार है, उसमें जरासाभी फर्क, कोई नहीं करसकते। हम लोग छद्मस्थ होनेके कारण भविष्यमें इसका क्या होगा? यह ज्ञान नहीं होनेके कारण, हमें प्रत्येक कार्यमें प्रवृत्ति करनी पडती है। यदि हमारेमें भी भावीपदार्थके यथार्थ जाननेका ज्ञान हो जायगा, तब, हम भी तदनुकूल ही प्रवृत्ति करेंगे। और यदि होनहार को भी तीर्थंकर भगवान् अन्यथा कर सकते हों, तो, हम तुमसे पूछते है कि—

वर्तमान समयमें महाविदेह क्षेत्रमें श्रीसीमंधरस्वामी विराजमान हैं। यदि सीमंधरस्वामी इस बातको चाहें, कि–इन्द्रको कह करके संसारमेंसे मिथ्यात्वको मिटा देना चाहिये, तो मिटा सकते हैं। और इस बातको तो आप लोग भी अच्छा समझते हैं। फिर भी यह बतलाईये कि–श्रीसीमंधरस्वामी ऐसा क्यों नहीं करते?।

चुलणीपिताका दृष्टान्त भी तेरापंथियोंने बेसमझसे ही दिया है। चुलणीपिता श्रावकने जब पौषध किया है, तब रात्रिके समय एक देवता उसकी परीक्षा करनेको आया है। देवताने साफ २ कह दिया है कि–'तू अपने धर्मको छोड दे, नहीं तो मैं तेरे पुत्रोंको मारूँगा।' इतना ही नहीं, चुलणीपिताकी धर्मदृढताको देख, इसको चलायमान करनेके लिये, उसके तीन पुत्रोंको लाकर मारते हुए भी दिखाए। तिसपर भी वह चलायमान नहीं हुआ। अन्तमें जब देवताने चुलणीपिताकी माताको मारनेका डर बताया, उस समय माताके मोहसे, उसने कोलाहल कर दिया। और इसको सुन माता, पौषधशालामें आई।

अब कहनेका मतलब यह है कि–यहाँपर चुलणीपिताने अनु-कंपाकी ही नहीं है। यहाँ तो मातापर इसको मोह उत्पन्न हुआ है। और यह मोह, इस समय अर्थात् पौषधमें करनेका नहीं होनेसे तथा कोलाहलके करनेसे, इसका व्रतभंग दिखलाया है। नकि, अनुकंपाके करनेसे। क्योंकि अनुकंपा तो यहाँ थी ही नहीं।

चेडा और कोणिकके संग्राममें एक क्रोड, अस्सी लाख मनुष्य मरे, इनको बचानेके लिये, भगवान्ने अनुकंपा लाकर, साधुओंको न भेजे, अथवा स्वयं न पधारे, ऐसा जो कहा जाता है, यह भी अज्ञानताका ही कारण है। क्योंकि–पहिले तो तेरापंथी, 'अनुकंपा' को ही समझे नहीं हैं। अनुकंपा 'दुःखितेषु अप-क्षपातेन दुःखप्रहाणेच्छा' अर्थात्—अपक्षपातसे, दुःखीके दुःख-के नाश करनेकी इच्छाको अनुकंपा कहते हैं। अब बतलाईये, यहाँपर अनुकंपाका कारण ही क्या है ?। एक राजा, दूसरेके राज्यलेनेकी इच्छासे अथवा ऐसे ही अन्य कारणोंसे जान–बूझ करके लडाई करता है। फिर इसमें अनुकंपाका क्या कारण रहा ?। और ऐसे तो क्या भरतराजाने साठ हजार वर्ष पर्यन्त युद्ध नहीं किया था ?। लेकिन ये प्रसंग अनुकंपाके नहीं गिने जा सकते हैं। दूसरी बात यह भी है कि—भगवान् तो स्वयं भावीपदार्थोंको जानते हैं, फिर इस प्रकार प्रवृत्ति क्यों करें ?।

अब अन्तमें समुद्रपालका दृष्टान्त आगे किया है। समुद्रपाल, एक दिन गोखमें बैठा था, उससमय राजपुरुष, एक चोरको बाँध करके वध करनेको ले जाते थे। इसको देखकर, समुद्रपालको परमवैराग्य हुआ, और पश्चात् वह साधु हो गया। तेरापंथी कहते हैं कि—समुद्रपालने दया लाकर उसको छुडाया क्यों नहीं ?।

लेकिन इस प्रसंगको समझना चाहिये। अनुकंपा दो प्रकारसे होती है। द्रव्यसें और भावसे। द्रव्यसे अनुकंपा वह कही जाती है कि–जो शक्तिके रहते हुए दुःखका प्रतीकार किया जाय। भावसे दया वह है, कि जो दुःखीको देख करके आर्द्र हृदय हो जाय। हम कहते हैं कि—' समुद्रपालने, यहाँ अनुकंपा नहीं की ' ऐसे कहनेवाले झूठे हैं। इसने यहाँपर भावअनुकंपा की है। अगर इसने भावअनुकंपा नहीं की होती, तो इसको वैराग्य उत्पन्न होता ही नहीं, और न वह साधु ही होता। उस दुःखी मनुष्यको, जिसका कि वध होनेवाला था, देखकर इसका हृदय जरूर आर्द्र हुआ। और इसीसे इसको वैराग्य भी हुआ। हां, द्रव्यअनुकंपा, अपनी शक्ति नहीं होनेके कारणसे नहीं की। एक मनुष्य, कि जिसको किसी अपराधके कारण राज्यकी तर्फसे ही वध करनेका हुकम हुआ हो, उसको छुडाना साधारण मनुष्यका कार्य नहीं है। यह कार्य तो राजा ही कर सकता है। अन्य नहीं।

अब तीसरी ढालको देखिये। तीसरी ढालमें अनुकंपाके अनेक दृष्टान्तोंको दे करके बहुतसे दृष्टान्त जिनआज्ञामे कहे हैं, बहुत जिनआज्ञा बाहर। लेकिन इन प्रसंगोंको जब हम सूत्रोंमें देखते हैं, तब हमें कहीं यह प्राप्त नहीं होता कि–यह अनुकंपा जिनाज्ञा बाहर है। और वास्तवमें देखा जाय तो अनुकंपाका कार्य जिनाज्ञा बाहर हो ही नहीं सकता। क्योंकि–अनुकंपा तो स्वयं भगवान्ने ही की है, और दूसरोंको करनेके लिये फरमाया भी है। तो फिर यह जिनाज्ञा बाहर कैसे हो सकती है ?। तब, यही कहना पडेगा कि–तेरापंथियोने अनुकंपाको मूलसे उठानेके लिये ही ऐसी स्वकल्पित घटना की है। देखिये,

मेघकुमारने, हाथीके भवमें, ससलेकी भावीदुःखसे रक्षा की, इस अनुकंपाको जिनाज्ञामें कहते हैं। नेमनाथ भगवान्‌ने, अपने विवाहके समय मारनेके लिये इकट्ठे किये हुए पशुओंकी, भावीदुःखसे रक्षा की इसको भी जिनाज्ञामें कहते हैं। धर्मरुचिअनगार, 'जीवोंकी विराधना होगी' इस अभिप्रायसे, कटुतुंबेके शाकको स्वयं खा गये, इसको भी आज्ञामें कहते है। और भगवान्‌का गोशालेको बचाना; हरिणैगमेषीदेवका, सुलसाके वहां छहों पुत्रोंका छोडना; मेघकुमारके गर्भमें आनेपर, धारिणीरानीका, अनुकंपासे इच्छित अशनादिकका खाना, हरिकेशीकी रक्षाके कारण यक्षदेवताका, ब्राह्मणोंको उल्टेकर देना, वृद्ध पुरुषपर दया लाकर कृष्णजीका, उसकी ईंटे घरपर लाना, इत्यादिको जिनाज्ञा बाहर कहते हैं।

लेकिन, यह सोचनेकी बात है कि-अमुक अनुकंपा आज्ञा बाहर है, ऐसा, जब तक कोई प्रमाण न मिले, तब तक कैसे माना जा सकता है? । क्या अन्तःकरणके दयार्द्र परिणाम, आज्ञा बाहर हो सकते हैं? । कभी नहीं। चाहे, जीवोंके भावी दुःखोंके लिये दयार्द्र परिणाम हुए हों, चाहे, जीवोंके वर्तमान दुःखोंके लिये हुए हों। परन्तु दयावाला परिणाम होना, यह तो एकान्त लाभकर्ता ही है।

मेघकुमारने, अपने पैरके नीचे आए हुए ससलेपर पैर न रख करके उसकी रक्षाकी। नेमनाथ भगवान्‌ने, अपने विवाहके समय, मारनेके लिये लाए हुए जीवोंकी, रक्षा की। और धर्मरुचि अनगारने, कटुतुंबके शाकको खा करके, मरनेवाले जीवोंकी रक्षा की। इसी प्रकारसे जिस अनुकंपाको, तेरापंथी जिनाज्ञा बाहर कहते हैं, उसमें भी जीवोंकी रक्षा और उचित भक्तिका ही कारण है, और कोई नहीं। इसलिये उन प्रसंगोंको

-भगवान्ने-गोशालेको बचाया, इसका सारा वृत्तान्त सूत्रके पाठोंके साथ पहिले लिख आए हैं। इस लिये पुनः लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

हरिकेशी मुनि, जिस समय यज्ञपाटकमें आए हैं, उस समय ब्राह्मणोंने आपका बहुत तिरस्कार किया है। तिसपर भी हरिकेशी मुनि मौन ही रहे हैं। इनको देखकर तंदुकनामक वृक्षमें रहने-वाले एक यक्षको मुनिजीपर भक्ति उत्पन्न हुई है, और इस भक्तिके कारणसे ही, यक्षने मुनिजीके शरीरमें प्रवेश किया है। जैसे उत्तराध्ययन सूत्रके बारहवें अध्ययनमें कहा है:—

"जक्खो तहिं तिंदुयरुक्खवासी अणुकंपओ तस्स महामुणिस्स।
पच्छायइत्ता नियगंसरीरं इमाइं वयणाइं उदाहरित्था॥८॥पृ.३५३।

अर्थात्—तंदुकनामक वृक्षमे रहनेवाले मुनिके भक्त यक्षने, अपने शरीरको अदृश्य करके (मुनिजीके शरीरमें प्रवेश करके) इस प्रकार बोलने लगा।

अब यहाँपर जो अनुकंपा दिखलाई है, यह भक्ति अर्थमे हैं। क्योंकि–बडोंके प्रति छोटोंका जो कर्तव्य होता है, वह भक्ति अर्थमें ही लिया जाता है। जैसे पुत्र अपने माता–पिताकी रक्षा करता है, यह अनुकंपा भक्ति अर्थमें ही है। और ऐसे दृष्टान्त शास्त्रोंमें भी अनेकों स्थानोंमें मिलते हैं। देखिये–

परमात्मा महावीरदेव, जिससमय माताकी कुक्षिमें आए हैं, उस समय माताकी अनुकंपासे, अर्थात माताको कष्ट न हो, इस अभिप्रायसे अपने अंगोपांगोंको गोपन कर दिये हैं। देखिये, कल्पसूत्रमे खास लिखा है:—

"तएणं समणे भगवं महावीरे माउय अणुकंपणट्ठयाए णिञ्चले णिप्फंदे णिरेयणे अल्लीणपल्लीणगुत्ते आवि होत्था" ॥ ९१ ॥

(पत्र-११४)

यहाँपर अंगोपांगोंको गोपनकरने-निश्चल, निष्पंद होनेमें मातकी अनुकंपा ही कारण लिखा है। तो कहना होगा कि-यहाँ अनुकंपाका अर्थ भक्ति करनेका है। और टीकाकारोंने भी 'मातुर्भक्त्यर्थम्' यही अर्थ किया है।

जिस समय हरिणैगमेषी देवने इन्द्रकी आज्ञासे, गर्भापहरण किया है, उस समय भी 'हिआणुकंपणगं' अर्थात् 'हितानुकंपकेन भगवतो भक्तेन' कहा है। यहाँ पर भी 'अनुकंपा' से भक्ति अर्थ लिया है।

इसी प्रकार, अनुकंपाका 'भक्ति' अर्थ बहुत जगह होता है। क्योंकि कहा भी है कि:—

"आयरिअणुकंपाए, गच्छो अणुकंपिओ महाभागो।
गच्छाणुकंपणाए, अव्वुच्छित्ती कया तित्थे" ॥ १ ॥

(धर्मसंग्रह, पृ० २३०)

अर्थात्—आचार्यकी अनुकंपामे, महाभाग गच्छ भी अनुकंपित ही है। और गच्छ की अनुकंपामे, तीर्थ कदापि व्युच्छिन्न नहीं होता है।

कहनेका मतलब यह है कि-ऐसे प्रसंगोमें जो 'अनुकंपा' शब्द आया उसका अर्थ 'भक्ति' करनेका है। और यह उचित भक्ति होनेके कारण इसको आज्ञा बाहर कभी नहीं कह सकते। क्योंकि-उचित कार्यांके करनेका तो शास्त्रकारोंका फरमान ही है।

बस, जैसा हरिकेशीमुनिका प्रसंग है, वैसा ही, हरिणैगमेषी-देवने, सुलसाकी अनुकंपासे, देवकीके छहों पुत्रोंको ला ला करके सुलसाके पास रक्खे हैं। यह भी प्रसंग है। यहाँपर भी हरिणैगमेषी देव, सुलसाका भक्त हुआ है। और इस भक्तिके कारण हीसे इसने, देवकीके छहों पुत्रोको लाकर रक्खे हैं। इस लिये यह भी आज्ञा बाहर नहीं कहा जा सकता। यदि यह अनुकंपा–भक्ति आज्ञा बाहर होती, तो जिस समय देवकीने भगवान्‌से अपने पुत्रोंका वृत्तान्त पूछा है, उस समय भगवान्‌ने यह तो कहा ही नहीं है कि–'हरिणैगमेषीदेवने तेरे पुत्रोंको वहाँ रक्खे हैं, यह अनुचित किया है।' फिर इसको आज्ञा बाहर कैसे कह सकते हैं?।

अच्छा, अब आईये धारिणीकी बातपर। तेरापंथी कहते हैं कि–मेघकुमार जिस समय धारिणीकी कुक्षिमें आया, उस समय धारिणीने गर्भकी अनुकंपासे इच्छित अशनादिकका आहार किया है। तेरापंथी इस अनुकंपाको आज्ञा बाहर कहते हैं।

हम तेरापंथियोंसे पूछते हैं कि–गर्भकी रक्षा करनेमे धारिणीका ही क्यों दृष्टान्त लिया गया?। संसारमें ऐसी कौन स्त्री है कि–जो अपने गर्भकी रक्षा करनेके लिये प्रयत्न नहीं करती है? फिर धारिणीने ही क्या गुन्हा किया कि–जो उसका दृष्टान्त आगे किया गया?। औरोंकी बाततो जाने दीजिये। जिस समय तीर्थंकर, माताकी कुक्षिमे आते है, उस समय तीर्थंकरकी माता भी, जिस प्रकार गर्भको नुकसान न पहुँचे, तदनुकूल ही अशनादि आहार करती है, तो बतलाईये, यह किस आशयसे? कहना होगा की गर्भकी अनुकंपाके आशयसे ही। तब तो फिर तीर्थंकरोंकी माताकी अनुकंपाको भी आज्ञा बाहर कहना चाहिये।

लेकिन नहीं, यह अनुकंपा आज्ञा बाहर नहीं है। क्योंकि माताका यह उचित कर्तव्य ही है। और यदि इस उचित कर्तव्यको न करे, तो प्राणघातका महान् पातकके लगनेका भय है।

हाँ, यह बात जरूर है कि-यह पक्षपाती अनुकंपा है। क्योंकि-कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्यने, अनुकंपाकी व्याख्या करते हुए, यह स्पटीकरण किया है कि-"अनुकंपा दुःखितेषु अपक्षपातेन दुःखप्रहाणेच्छा। पक्षपातेन तु करुणा स्वपुत्रादौ व्याघ्रादीनामप्यस्त्येव" (योगशास्त्र, द्वितीयप्रकाश, पृ० १८२) परन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता है कि-यह पक्षपाती अनुकंपा आज्ञा बाहर है। यदि यह अनुकंपा आज्ञा बाहर होती तो संसारमें कोइ भी धर्मात्मा स्त्री (तीर्थंकरकी माता जैसी), अपने गर्भकी रक्षा करनेके लिये प्रयत्न करती ही नहीं। ऐसी अनुकंपा पक्षपाती होने पर भी कर्तव्य स्वरूपा, अर्थात् करने लायक ही है। न कि उपेक्षा करने लायक। क्योंकि, इस अनुकंपाके प्रति उपेक्षा करनेसे जीवहत्याका पातक लगनेका भय रहता है।

कई तेरापंथी यह भी कहते हैं कि—"धारिणीको अकाल वृष्टि होनेका दोहला उत्पन्न हुआ। और उस दोहलेको पूरा करनेके लिये, अभयकुमारने देवताकी आराधना कर, अनुकंपासे अकाल वृष्टि करवाई, यह भी जिनाज्ञा बाहर है"। परन्तु यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि—अभयकुमारका यह कर्तव्य था कि—किसी भी प्रकारसे माताका दोहद (विचार) पूर्ण करना। इसी कर्तव्यको पालन करनेके लिये, अभयकुमारने भक्ति स्वरूपा अनुकंपा की है, तो यह जिनाज्ञा बाहर नहीं हो सकती। हम पूछते हैं कि—जब तीर्थंकर, माताके गर्भमें आते हैं, तब उनकी

माताके भी समस्त दोहद पूरे किये जाते हैं, क्या यह भी जिनाज्ञा ब्राहर है ? कभी नहीं। दोहदोंके पूरे करनेकी वात तो दूर रही परन्तु उत्तम और धर्मज्ञ पुरुषोंका तो यही कर्तव्य दिखलाया है किः—

“ पितुर्मातुः शिशूनां च, गर्भिणीवृद्धरोगिणाम् ।
प्रथमं भोजनं दत्त्वा, स्वयं भोक्तव्यमुत्तमैः ” ॥ १ ॥

(धर्मसंग्रह, पृष्ठ २०६)

अर्थात्—पिता, माता, वालक, गर्भिणी, वृद्ध और रोगी, इन्होंको पहिले भोजन करा करके, पश्चात् उत्तम पुरुषोंने स्वयं भोजन करना चाहिये।

इतना ही नहींः—

“ चतुष्पदानां सर्वेषां, धृतानां च तथा नृणाम् ।
चिन्तां विधाय धर्मज्ञः , स्वयं भुञ्जीत नान्यथा ” ॥२॥

(धर्मसंग्रह, प० २०६)

अर्थात्—धर्मज्ञपुरुष, समस्त पशुओंकी, और अपने आश्रित मनुष्योंकी चिन्ताकरनेके पश्चात् स्वयं भोजन करे।

अव विचारनेकी वात है, जब उत्तम और धर्मज्ञ गृहस्थ पुरुषोंके यहाँतक कर्तव्य दिखला दिये, तो फिर अभयकुमार जैसा धर्मात्मापुरुष, अपनी माताके दोहदको पूरा करनेके लिये भक्ति स्वरूपा करे, इसमें आश्चर्यकी वात ही क्या है ?।

यह समझनेकी वात है कि—अभयकुमारका यह उचित ही कर्तव्य था। और इस प्रकार जो उचित नहीं करता है, वह श्लाघनीय भी नहीं गिना जाता है। देखिये, इसके लिये कहा हैः—

" संपत्तबहुगुणोवि हु जो न मुणइ सम्ममुचियमायरिउं ।
सलहिज्जइ सो न जणे ता मुणिऊणं कुणह उचियं " ॥१॥
(श्राद्धगुणविवरण, पत्र–४७)

अर्थात्–जो मनुष्य, सम्यग् प्रकारसे उचित आचरणको नहीं करता है, वह बहुगुणोंको धारण करते हुए भी, श्लाघाको प्राप्त नहीं कर सकता । अतएव उचित कर्तव्यको अवश्य करना चाहिये ।

अभयकुमारका यह उचित कर्तव्य था–भक्तिस्वरूपा अनुकंपा थी, इस लिये, यह जिनाज्ञा बाहर कभी नहीं हो सकती ।

अब रही कृष्णने की हुई, वृद्धकी दयाकी बात । यह भी आज्ञा बाहर नहीं है । क्योंकि–एक वृद्ध पुरुष ईंटें उठा उठा कर ले जा रहाथा, उसको देख कर कृष्णको दया आई है । और इस दयाके कारण उसको सहायता की है । क्या ऐसे दुःखी मनुष्यको सहायताका करना अनुचित था, जो इस दयाको हम आज्ञा बाहर कहें ? । क्या इस प्रसंगमें कहींपर यह लिखा हुआ दिखा सकते हैं कि–' इसको आज्ञा बाहर कहना, ' अथवा ' यह अनुचित कार्य था ? । ' कहीं नहीं । बल्कि–सूत्रमें तो यही मिलता है कि–जिस समय, कृष्णजी भगवान्के पास गये, उस समय भगवान्ने यही कहा है कि–" हे कृष्ण ! जैसे तुम्हारी सहायतासे, उस वृद्ध पुरुषकी शीघ्र कार्य सिद्धि हो गई, वैसे ही सोमलकी सहायतासे गजसुकुमालकी मोक्षप्राप्तिरूप कार्य सिद्धि शीघ्र हुई है ।

अब विचार कीजिये, अगर कृष्णका सहायता करना अनुचित होता तो, भगवान् इस कार्यका जिकर करते हुए, योंही कह देते कि–' तुमने रास्तेमें आते हुए वृद्धपुरुष पर उपकार किया

है, वह अनुचित है।' लेकिन ऐसा तो कहा ही नहीं। बल्कि इस कार्यको तो प्रशंसा रूपमे कहा है। फिर इसको आज्ञा बाहर कैसे कह सकते हैं?।

स्थूलबुद्धिसे विचार किया जाय, तो भी यह मालूम हो सकता है कि–संसारमे परोपकार करना, यह तो परमधर्म माना गया है। और इसी प्रकार बडे लोग, दुःखीमनुष्योंके ऊपर परोपकार करते ही आए हैं। और परोपकार तब ही होता है, जब दुःखीको देख करके अन्तःकरणमें दया आती है। फिर इसको आज्ञा बाहर कहना, कितनी अज्ञानताका कारण है?।

इस प्रकार और भी बहुतसी बातें निर्दयताकी इस तीसरी ढालमें लिखी है। जैसे कि–'कोई जीव मरता हो, तो उसको उठाकर छायामें नहीं रखना चाहिये।' 'कोई मनुष्य जगलमें भूला पड गया हो, उजाडमें जा रहा हो, और बहुत दुःखी हो रहा हो, तो उसको सीधा रस्ता नहीं दिखाना चाहिये। उसको वहाँ ही अनशन कराकरके स्वर्गमे पहुँचा देना चाहिये।' इत्यादि। लेकिन इन बातोंका जवाब लिख, पिष्टपेषण करना अच्छा नहीं समझते।

अच्छा, अब चतुर्थ ढालको देखिये। चोथी ढालमें, तेरापंथ मतके उत्पादक भीखमजीने, अपनी मानी हुई दयाका उल्लेख कर, ऐसी कुयुक्तियोंसे लोगोंको भ्रमित करनेकी चेष्टा की है, कि जिसको पढकर सचमुच भीखुनजी और उसके अनुयायियोपर भावदया ही आती है। इस चतुर्थ ढालको पढकरके, हम यह तो अवश्य कह सकते हैं कि– भीखमजीने, अपने मतके प्रचार करनेके कारण, इस बातपर तो बिलकुल ख्याल ही नहीं किया

है कि–किसी भी कार्यके करनेमे मनुष्यके परिणाम खास करके देखे जाते है। और इसीका यह परिणाम है कि–इस चोथी ढालमे अनेक प्रकारके कुतर्क करके वास्तविक वातको छिपाई है। देखिये। भीखुनजी कहते हैं:—

"कीडी मांकादिक लटा गजायां, ढांढारा पग हेठे चीथ्या जावे।
भेषधारी कहे में जीवबचावां, तो चुणचुग जीवांने कायनै उठावे" ॥ ९ ॥

यह कहा किसने कि–'जिससमय कोई पशु जा रहा हो, और उसके नीचे अगर कोई जीव आ जाता हो, और दृष्टिमें अगर आ जाय, तो उसको न उठावे?। जरूर उठाकर अलग रक्खे। अगर वहाँपर कोई गृहस्थ न होवे, तो साधु स्वयं उठाकर अलग रक्खे, तो उसमें कोई हर्जकी वात नहीं है। और यह कहना भी बिलकुल भूल है कि–'साधुको, वैसे ही दिनभर जीवोंको उठाते फिरना चाहिये।' क्योंकि अच्छे कार्य भी समयपर ही किये जाते हैं। हम तेरापंथी साधुओंमे पूछते हैं कि–आप लोग, जीवको बचानेमें पाप समझते हैं, परन्तु सामायिक करानेमें तो धर्म समझते हो। अच्छा, इसमें अगर धर्म समझते ही हो, तो फिर दिन भर लोगोंके मकानोमे घूमघूम करके लोगोंको सामायिक क्यों नहीं कराते?। क्योंकि–स्थानमें बैठकरके तो तुम्हारे उपदेशसे जितने आदमी सामायिक करेंगे। उससे घरघर घूमकर सामायिक कराते फिरोगे, तो वहुत आदमी करेंगे। तो फिर ऐसा क्यों नहीं करते?। लेकिन, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। इसी तरहसे हम भी जीवको बचानेके लिये उसी समय प्रयत्न करते हैं, जब कि, हमारे सामने ऐसा

कोई प्रसंग आ गया हो। हां, ऐसे प्रसंगमें, हम तुम्हारे जैसी निर्दयता नहीं रख सकते है।

आगे चलकर भीखमजी कहते हैः-

" अव्रती जीवांरो जीवणो चावे, तिण धरमरो परमारथ नहिं पायो।
सरधा अगिनानीरी पगपग अटके, ते न्याय सुणज्यो भवियण
चित्तल्यायो " ॥ १७॥

भीखमजीके कहनेका सार यह है कि-अव्रतीजीवांका जीना-मरना नहीं चाहना चाहिये। लेकिन यह भीखमजीकी समझकी ही भूल है। यदि अव्रती-असंयती जीवोंका जीना भी नहीं चाहना यह सिद्धान्त सही सही होता, तो आज संसारमें दयाका नाम तक रहने नहीं पाता। पार्श्वनाथ प्रभुने जलते हुए काष्ठमेंसे जिस सांपको निकलवाया था, वह क्या व्रती था? । नेमनाथ भगवान्ने जिन पशुओंको बचाए थे, वे क्या व्रती थे? । मेघरथ राजाने जिस कबूतरको बचाया था, वह क्या संयमी था? । उतनी दूर क्यों जाना चाहिये? । आप लोग ही, जिन वाउकायके जीवोंको बचानेके लिये मूँहपर पट्टी बांधते हो, वे क्या व्रती है? । जिस जीवोंको बचानेके लिये आप लोग लंबासा ओघा (रजोहरण) रखते हैं, वे क्या व्रती हैं? । तुम्हारे भोजनमे, जो मक्खी वगैरह जीव गिर जाते हैं, और उनको झटसे बाहर निकाल बचाते हो, वे क्या व्रती हैं? । बल्कि यों ही क्यो न कह दिया जाय कि जिन जीवोंकी रक्षा करनेके लिये आप लोगोंने घर छोडा है, वे क्या व्रती है?। कभी नहीं? जब वे व्रती नहीं थे-सयमी नहीं थे, तो फिर, उन पूर्व पुरुषोंने ऐसी प्रवृत्ति क्योंकी? और आपलोग क्यों करते हो? । तब कहना पडेगा कि-यह सिद्धान्त बिलकुल मनःकल्पित झूठा ही है।

वास्तवमें, इससिद्धान्तके माननेमें जो भूलखाई है, उसका स्पष्ट खुलासाकर पाठकोंको सच्चा ज्ञान कराना, हम अपना कर्तव्य समझते हैं ।

सूत्रोंमें बहुत जगह ऐसे पाठ आते हैं, कि–जिसका मतलब ऐसा होता है कि-'साधु, असंयतजीवनको न चाहे ।' बस, इसी मतलबको ले करके तेरापंथी, अपने साधुओंको छोड करके, संसारमें अन्य किसी जीवोंका जीना नहीं चाहते । परन्तु ऐसा माननेमें, तेरापंथियोंने कैसी भूल की है, इस बातको देखिये ।

पहिले सूयगडांगसूत्रको ही देखिये । सूयगडांगसूत्रके, प्रथम श्रुतस्कंधके तेरहवे अध्ययनमें इस प्रकारका पाठ है:—

"आहत्तहीयं समुपेहमाणे सव्वेहिं पाणेहिं णिहाय दंडे ।
णो जीवियं णो मरणाहिकंखी परिव्वएज्जा वलयाविप्पमुक्के"।२३।
(पृष्ठ–५०६)

अर्थात्–यथातथ्यमार्गको जानता हुआ, समस्त प्रकारके जीवोंकी हिंसासे रहित, एवं जीवितव्य तथा मरणकी वांछा नहीं करता हुआ (साधु), संयमकी पालना करे, और मिथ्यात्व मोहसे विप्रमुक्त होवे ।

अब, इस पाठमें जीना–मरना नहीं चाहना कहा । लेकिन किसका ? साधु, अपना जीना मरना न चाहे । औरोंका नहीं । क्योंकि–'णो जीविय णो मरणाहिकंखी' यह साधुका ही विशेषण है ।

इसी प्रकार सूयगडांगसूत्रके, और पाठोंको भी देखिये ।

"निक्खम्म गेहाओ निरावकंखी, कायं विउसेज्ज नियाणछिन्ने ।
णो जीवियं णो मरणावकंखी, चरेज्ज भिक्खू वलया विमुक्के॥२४॥
(प्र० श्रु०, अ० १०, पृ० ४१७)

अर्थात्-गृहस्थावासको छोडकरके, साधु, निरपेक्षी हो कर, अपनी कायाको वोसिरावे, अर्थात्–शरीरपर ममत्वभाव न रख करके निदान रहित, और जीने–मरने की नहीं आकांक्षा करते हुए एवं संसारसे विप्रमुक्त होते हुए विचरे ।

" सुयक्खायधम्मे वितिगिच्छतिण्णे, लाढेचरे आयतुले पयासु ।
आयंन कुज्जा इहजीवियट्ठी चयं न कुज्जा सुतवस्सि भिक्खू ॥३॥
(प्र० श्रु० अ० १०, पृ० ४०१)

अर्थात्–(परमात्माके कहे हुए) श्रुताख्यात धर्ममे शंका रहित रहे निर्दोष आहारको ले, समस्त जीवोंको आत्मतुल्य माने । अपने जीवनके लिये आश्रवको न सेवे अर्थात्–असंयमआश्रव न करे । एवं सुतपस्वी साधु, धन–धान्यादिका संग्रह भी न करे ।

अच्छा, और आगे चलिये—

" जेहिं काले परिक्कंतं न पच्छा परितप्पए ।
ते धीरा बंधणमुक्का नावकंखंति जीविअं " ॥ १५ ॥
(प्र० श्रु० अ० ३, पृ० २१२)

अर्थात्–जिसने समयपर (धर्ममें) पराक्रम किया है, वह, पीछली अवस्थामे पश्चात्ताप न करे । और वह धीरमनुष्य, बंधनसे मुक्त होते हुए जीवितव्यकी (असंयम जीवितव्य) आकांक्षा न करे।

" जीवितं पिट्ठओ किच्चा अंतं पावंति कम्मुणं ।
कम्मुणा संमुहीभूता , जे मग्गमणुसासई " ॥ १० ॥
(प्र० श्रु०, अ० १५, पृ० ५४२)

अर्थात्–वह मनुष्य (असंयम) जीवितव्यका निषेध करके कर्मका नाश करे । और शुभ अनुष्ठानसे मोक्षके सम्मुख होते हुए जिन मार्गका आचरण करे ।

कहाँ तक लिखे, सूयगडांगसूत्रमें ऐसे ऐसे अनेकों स्थानमें असंयमजीवितव्यके नहीं चाहनेके लिये पाठ मिलते हैं। परन्तु इससे दयाका निषेध कैसे हो सकता है?। क्योंकि-उपर्युक्त प्रसंगोंमे और अन्य प्रसंगोंमे असंयमजीवितव्यके नहीं चाहनेकी बात आई है, किन्तु यह बात नहीं आई है कि-'असंयती दुःखी जीवोको न बचाना।'

सूत्रोंका रहस्य तो यह है, और तेरापंथी इसको ले बैठे कि-'असंयतजीवोंका जीना ही नहीं चाहना।' अर्थात् 'कोई असंयत जीव, कष्टोंसे मर रहा तो उसको नहीं बचाना।' कैसा उत्तम (!) तत्त्वनिकाला ?। बुद्धिमत्ताका है कुछ ठिकाना ?। यह सूत्रोंमे कहा ही कब कि-कोई असंयती जीव मरता हो तो उसको न बचावो ?। परन्तु ठीक है, जिनके हृदय दयासे करुणासे-अनुकंपासे शून्य हो गये हो, वे मजेसे दुःखी जीवोंके दुःख देखते रहे इसमें आश्चर्य ही क्या है।

शायद यहाँपर कोई यह शंका करे कि-जब साधु, अपने ही असंयतजीवनको नहीं चाहता है, तो फिर अन्य जीवोंका असंयतजीवन क्यों चाहे ?।'

ठीक है, इस बातको तो हम भी स्वीकार करते हैं। साधु ऐसा चाहे ही क्योंकि दुनियाके प्राणी असंयत रहें ? साधुओंकी तो हमेशाके लिये यह भावना रहती है कि-'दुनियाके समस्त प्राणी, संयती-संयमी-व्रती-साधु-मुमुक्षु हो जाँय और उनका मोक्ष हो।' परन्तु ऐसा मानकरके, दुःखी प्राणीको बचानेकी कोशिश क्यों न करे ?। क्या नेमनाथप्रभु, पार्श्वनाथ प्रभु तथा श्रीमहावीरस्वामि, कि जिन्होंने जीवोंको बचाए हैं, वे जीवोंका असंयतजीवन चाहते थे ?। जब नहीं चाहते थे, तो फिर भी उन्होंने क्यों

बचाये ? । तब कहना होगा कि–' असंयतजीवन नहीं चाहना ' इसका मतलब यह नहीं है कि–असंयती जीवोंको नहीं बचाना । क्योंकि, ' असंयतजीवनका नहीं चाहना ' और ' असंयती जीवोंको बचाना ' ये दोनों भिन्न २ चीजें हैं । अत एव यह सिद्ध नहीं हो सकता है कि–' मरते हुए जीवोंको नहीं बचाना । '

इसी चोथी ढालमे भीखमर्जीने, अपने आपसे ही ऐसे २ कुविकल्प किये हैं कि—' अमुक प्रसंगमें साधु जीवको क्यों न बचावे ? ' । ' अमुक स्थानमे क्यो न बचावे ? ' लेकिन यह सब झूठी ही कल्पनाएं है । जिनका हृदय दयासे परिपूर्ण है, जो लोग जीवोको बचानेमें धर्म समझते हैं, वे किसी भी प्रसंगमें दुःखी जीवोंको अपनी आंखोसे नहीं देखसकेंगे । द्रव्य या भाव दोनोंमेंसे एक प्रकारकी तो अनुकपा अवश्य ही करेंगे ।

तेरापंथियोंकी एक और फिलासोफीने तो कमाल कर दिया है । भीखमजी इसी चोथी ढालमें आगे जा करके कहते हैं:—

" साधु तो साधुने जीव बतावे, ते पोतारो पाप टालणरे काजे ।
श्रावक श्रावकने जीव नहीं बतावे, तो किसो पाप लागे किसो व्रत भाजे " ॥ ४२ ॥

बस, हद आ चुकी । भीखमजीने अपने श्रावकोंको खूब ही उपदेश दिया । बस, श्रावक संसारमे कितने ही अनर्थ करें, तेरापंथीयोंके मन्तव्यानुसार, उनको पाप लगेंगे ही नहीं । हम तेरापंथियोंसे पूछते हैं कि—मेघरथ राजाने कबूतरको बचाया था, वह क्या साधु अवस्थामें बचाया था ? । पार्श्वनाथ प्रभुने सांपको निकलवाया था, वह क्या साधु अवस्थामें निकलवाया था ? । नेमनाथ प्रभुने जीवोको बचाये थे, वे साधु अवस्थामें बचाये थे ? ।

नहीं, गृहस्थावस्थामें ही। तब फिर यह कैसे कहा जाय कि–गृहस्थ, कोई जीव मरता हो तो दिखावे ही नहीं ?। क्या भगवान्ने दया करना साधुओंके लिये ही कहा, गृहस्थोंके लिये नहीं ?। नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता है ?। भगवान्ने, जीवोंको बचाना—बचवाना यह मनुष्य मात्रके लिये कहा। फिर वह साधु होवे चाहे गृहस्थ।

प्यारे पाठक ! तेरापंथियोंका तो यहाँ तक सिद्धान्त है कि–'श्रावक श्रावकको जीमावे, तो भी पाप लगे।' अर्थात् एक दूसरेको खिलाना–पिलाना भी नहीं। खूब कही। क्या तेरापंथी इस बातको नहीं जानते हैं कि–श्रावक यदि शक्ति होनेपर साधर्मिकवात्सल्य न करे अर्थात् स्वधर्मीबन्धुओंको न जिमावे, तो दर्शनाचारका पालन नहीं हो सकता है। (दर्शनातिचार लगता है) देखिये पन्नवणा सूत्रका पाठः—

" निसंकिय निक्कंखिय णिव्वित्तिगिच्छा अमूढदिट्ठी य।
उववूहथिरीकरणे वच्छल्लपभावणे अट्ठ " ॥ १४ ॥

(प० ६५)

अर्थात — १ समस्तप्रकारकी शंकाओंसे रहित पना, २ समस्त प्रकारकी कांक्षासे रहितपना, ३ फलप्राप्तिकी शंकासे राहित्य (साधु विषयक दुगंच्छा करके रहित, ऐसा भी अर्थ होता है) ४ अमूढदृष्टि, अर्थात अन्यदर्शनीय आडंबरसे चलायमान न होना, ५ उपबृंहण अर्थात् स्वधर्मीबन्धुकी प्रशंसा करनी, ६ स्थिरीकरण, यानि धर्मसे डिगते होते हुए को स्थिर करना, ७ वात्सल्य अर्थात् स्वधर्मियोंकी भक्ति करना, और ८ प्रभावना यानि धर्मोत्सवादि।

उपर्युक्त आठ, दर्शनके आचार दिखलाये हैं। यदि इतनी बातें शक्त्यनुसार न करे, तो दर्शनातिचार लगे। (यही गाथा उत्तराध्ययन सूत्रके ८११ वें पृष्ठमें भी है)

अब सूत्रोंमें तो इस प्रकार, श्रावकोंको आपस २ में भक्ति करनेको दिखलाया है, तो फिर तेरापंथी ऐसे कार्योंमें पाप कैसे दिखलाते हैं ? । क्या श्रावकोंके लिये दया-दानका विधान है ही नहीं ? जरूर है । हम तो यहाँतक कहते हैं कि-वह महाश्रावक ही नहीं कहा जा सकता है कि-जो दुःखी जीवोंको देख करके दया बुद्धिसे, यथाशक्ति धनादिसे उसके दुःखको दूर करनेकी चेष्टा नहीं करता है । देखिये, इस विषयमें, कलिकाल सर्वज्ञ प्रभुश्रीहेमचन्द्राचार्य योगशास्त्रमें क्याही स्पष्ट खुलासा करते हैंः-

"न केवलं सप्तक्षेत्र्यां धनं वपन् महाश्रावक उच्यते, किन्त्वतिदीनेष्वपि निःस्वान्धबधिरपङ्गुरोगार्तप्रभृतिषु कृपया केवलया धनं वपन्, न तु भक्त्या । भक्तिपूर्वकं हि सप्तक्षेत्र्यां यथोचितं दानम् । अतिदीनेषु त्वविचारितपात्रापात्रमविमृष्टकल्पनीयाऽकल्पनीयप्रकारं केवलयैव करुणया स्वधनस्य वपनं न्याय्यम् । भगवन्तोऽपि हि निष्क्रमणकालेऽनपेक्षितपात्रापात्रविभागं करुणया सांवत्सरिकदानं दत्तवन्त इति । तदेवं भक्त्या सप्तक्षेत्र्यां दीनेषु चातिदयया धनं वपन् महाश्रावक उच्यते ।"

(पृ० ५९४-५९५)

अर्थात्—केवल सात क्षेत्रोंमें धनका व्यय करे, उसको ही महाश्रावक नहीं कहते हैं, किन्तु अत्यन्त दीन, निर्धन, अन्ध, बधिर, पङ्गु और रोगोंसे दुःखी आदिमें केवल दयाकी बुद्धिसे द्रव्यव्यय भी करे, उसको महाश्रावक कहते हैं। ऐसे दीना-

दिकोंमें द्रव्यव्यय भक्तिसे नहीं किया जाता है। भक्तिपूर्वक तो सातक्षेत्रोंमें ही यथोचित दान कहा है। और अतिदीनादिमें तो पात्र-कुपात्र, कल्पनीय-अकल्पनीय वगैरह विचारोंको छोड केवल दया-करुणा-अनुकंपासे ही स्वधनका व्यय करना योग्य है। और इसी तरह भगवान् भी दीक्षा लेनेके समय पात्रापात्रका विभाग नहीं करके करुणासे सांवत्सरिक दान देते हैं। कहनेका सार यह है कि-भक्तिसे सातक्षेत्रोंमें, दयासे दीनोंमें जो धन-व्यय करे उसीका नाम महाश्रावक है।

अब बतलाईये, तेरापंथियोंका सिद्धान्त कैसे शास्त्रोक्त कहा जा सकता है?। स्वबुद्धिसे भी कोई यह कहनेका साहस नहीं कर सकेगा कि-'श्रावकोंको पाप लगता ही नहीं' और 'किसीको खिलाना-पिलाना चाहिये ही नहीं।' शास्त्रकार तो यह कहते हैं कि-यदि दयासे गरीब मनुष्योंकी रक्षा न करे, तो उनको श्रावक ही नहीं कहा। और तेरापंथीयोंने तो श्राव-कोंको यहाँतक छूट दे दी कि-उनको कोई पाप ही न लगे। तब तो तेरापंथी साधुओंसे, तेरापंथी श्रावकोंकी मुक्ति पहिले हो जायगी। जब ऐसा ही है, तो फिर साधु क्यों हो जाते हैं?। अस्तु,

इस चतुर्थ ढालमें भीषमजीने, यह भी बडे महत्त्वकी बात कही है कि-"किसीके वहाँ लाय लगी हो, तो उसको बुझा-नेके लिये नहीं जाना चाहिये। अगर लायके बुझानेमें फायदा होता हो, तो कसाईको मारदेनेमें भी फायदा ही होना चाहिये।" जैसे कहा है:—

"जो लाय बुझायां जीव बचे तो, कसाईने मार्यां बचें घणा प्राणो।
लाय बुझायां कसाईनें मार्यां दोयां रो लेखो सरीखो जाणो"॥५९॥

भीखमजीकी बुद्धिकी हम कहाँ तक तारीफ करें ? । जिनमें इ-तनी भी समझनेकी शक्ति नहीं है कि-लायको क्यों बुझाई जाती है, और कसाईको क्यो नहीं मारा जाता है ? । लायको बुझानेमे एके-न्द्रियजीवोंकी विराधनाके सिवाय अन्य कौनसा नुकसान है ? । परन्तु कसाईको मारनेमें पंचेन्द्रिय मनुष्यके मारनेका महान् पाप लगता है । हम तेरापंथियोंसे पूछते हैं कि-क्या एकेन्द्रियजीवोंके और पंचेन्द्रियजीवोंके पुण्य एक समान हैं ? । क्या एकेन्द्रियजी-वोंकी विराधनामें और पंचेन्द्रियकी विराधनामे समान पाप लगता है? । यदि ऐसा ही सिद्धान्त है तो फिर तुम्हारे श्रावक अन्नको क्यों खाते हैं ? । पंचेन्द्रियजीवोंको ही क्यों पका पका कर नहीं खाते ? । क्योंकि-तुम्हारे हिसाबसे तो एकेन्द्रिय-पंचेन्द्रिय समान ही हैं । और इस हिसाबसे तो हस्तितापसों जैसी प्रवृत्ति करनी पडेगी । खैर, इस निर्दयताके ऊपर हम विशेष लिखना नहीं चाहते, सिर्फ एक दृष्टान्तको ही लिख कर इसका उत्तर मांगना चाहते हैं ।

हम तेरापंथियोंसे पूछते हैं कि-तुम्हारे किसि साधुके पास, एक मनुष्य ऐसा आया कि, जो हमेशा कंदमूलको खाता है, और रोज सौ सौ बकरोंको भी मारता है । वह आ करके कहे कि-' आप मुझे दोनोंमेंसे एक सोगन दीजिये । यातो कंदमूल खानेकी कसम दे दीजिये, अथवा तो सौ बकरों मारनेकी कसम दे दीजिये । अब बतलाईये, तुम्हारे साधुजी किस बातका सोगन देंगे ? । कंदमूल नहीं खानेका, या कि बकरोंके, नहीं मारनेका ? । इसका जवाब दें ।

आगे चल करके पांचवीं ढालमे, एक यह भी विचारणीय बात कही हुई है कि-' द्रव्य देकरके किसीके प्राण न बचाने चाहियें, और जीव मार करके जीव न बचाने चाहियें । ' जैसे:-

" धन देइ राखे परप्राणने, क्रोधादिक हो अठारेइ सेवाय,
एहीज कामां पोते करी, परजीवांने हो मरतां राखे ताइ" ॥२४॥
" जीव मारी जीव राखणा, सूतरमें हो नहीं भगवंत वेण,
ऊंधो पंथ कुगुरां चलावियो, शुद्ध न सूझे हो फूटा अंतर नेण" ॥२५॥

ये दोनों बातें मतिभ्रमसे लिखी हुई मालूम होती हैं। द्रव्य दे करके जीवोंको बचानेमें नुकसान कौनसा है ? यह पहिले सोचना चाहिये। हमारी दृष्टिसेतो इसमें दो प्रकारके लाभ देखे जाते हैं। एकतो उतने, द्रव्यपरसे मूर्च्छा कम होनेका और जीवके बचानेका। फिर द्रव्य देकरके क्यों न बचाना ?। और ऐसे तुच्छ विचार तो अज्ञानी लोग ही कर सकते हैं कि-'रुपये दे करके जीवोंको छुडाये जायेंगे, तो उन रुपयोंके और जीव ला करके मारेगा।' जिसके हृदयमें दया देवीने निवास किया है, वह मनुष्य, अपने सामने मरते हुए जीवको कभी नहीं देख सकेगा। बचानेवालेका अभिप्राय तो उस मरते हुए जीवको बचानेका ही होता है। नकि रुपये दे करके और जीवोंके मरानेका। यदि द्रव्य व्ययसे जीवोंके बचानेका निषेध ही करते हो तो हम उन तेरापंथियोंसे पूछते हैं कि, आपके साधु-साध्वियाँ, जीवोंको बचानेके लिये जिन उपकरणोंको रखते हैं, वे क्या द्रव्यव्ययके सिवाय आते हैं। तुम्हारे साधु-साध्वी जब बीमार पडते हैं, तब उनकी डॉक्टर-वैद्योंसे दवाई करवानेमें क्या द्रव्यव्यय नहीं होता है ?। फिर क्यों कर कह सकते हैं कि-जीवोंके बचानेमें द्रव्यव्यय नहीं करना चाहिये ?।

अब रही जीव मारकर जीव बचानेकी बात। सो यह भी ठीक नहीं है। जीवोंके मारनेकी बुद्धिसे जीव बचाये नहीं जाते हैं। किन्तु उस समय जीवोंके बचानेके ही परिणाम होते हैं।

और यदि तेरापंथियोंका यही सिद्धान्त सत्य हो कि–'एकेन्द्रिय जीवोंकी विराधनाके भयसे पंचेन्द्रिय जीवोंको नहीं बचाने चाहिये।' तो हम तेरापंथियोंसे पूछते हैं कि–मानलीजिये कि–तुम्हारी कोई साध्वी गोचरी लेनेको जा रही है। उस समय एक सांढ उसके पीछे पडा। और किसी तेरापंथीने अपनी दुकान परसे उसको देखा भी। अब बतलाइये, वह तेरापंथी, अपनी दुकान पर बैठे २ देखता ही रहेगा या कि दौड करके उस साध्वीको बचानेका प्रयत्न करेगा ?। क्या दुकानसे उठ कर उस साध्वीको बचावेगा, तो क्या उसमें एकेन्द्रियजीवोंकी विराधना नहीं होगी ?।

वैसे ही एक और दृष्टान्तको भी सुन लीजिये। आपके दो साधु, जिनमें एक गुरु है और एक चेला, कहीं पर जा रहे हैं। गुरुजीके सामने एक सांप काटनेके लिये धस आया। अब कहिये, दूर पर रहा हुआ चेला, दौड करके गुरुजीकी जानको बचानेका प्रयत्न करेगा या नहीं ?। यदि दौढ करके बचावेगा, तो उसमें जीव विराधना जरूर ही होगी। और यह तो कह ही नहीं सकते हो कि–चेला, गुरुको बचानेका प्रयत्न न करे। क्यों कि–ऐसा करनेसे तो भक्ति भंगका महान् पाप लगेगा।

तब यह कहना ही होगा कि–संसारमें ऐसा कोई मनुष्य ही नहीं है कि–जीव विराधना विना किये ही, जीवको वर्तमान दुःखसे बचाता हो। तो फिर ऐसी झूठी कल्पनाएं करके निर्दयताको क्यों बढाना चाहिये। हां, एक बात जरूर है कि, प्रत्येक कार्यमें मनुष्यको लाभालाभ और अधिकार अवश्य देखना चाहिये। और उसको देख करके ही कार्यमें प्रवृत्ति करनी चाहिये। अस्तु,

अब आगे चलिये। इसी पांचवीं ढालमें, राजाश्रेणिकने जो **अमारी पटह** बजवाया था, उसका भी उल्लेख किया गया है।

लेकिन इस कार्यको, भीखमजीने राजनीतिमें दिखलाया है, धर्ममें नहीं। इसमें कई एक कुतर्क भी किये हैं कि–' अगर धर्म होता तो अन्य चक्रवर्त्यादि राजाओंने अमारी पटह क्यों नहीं बजवाया ? ' वगैरह।

भीखमजीकी बुद्धिका परिचय ऐसी बातोंमे खूब ही मिल जाता है। क्योंकि—भीखमजीको अभी तक यह भी मालूम नहीं है कि—अमारी पटह बजवाना, यह राजाओंके लिये राजनीतिका विषय नहीं है, किन्तु धार्मिक बात है। धार्मिक बातोंके लिये यह नहीं कहा जा सकता है कि—"अमुकने यह कार्य किया, तो औरोंने क्यों नहीं किया ? '

अगर ऐसा नहीं है, तो हम पूछते हैं कि—तुम्हारे मजहबमें इतने ही साधु-साध्वी क्यों है ? जितने पुरुष स्त्री हैं, वे सभी साधु-साध्वी क्यों नहीं हो जाते ? ।

अच्छा, अब तेरापंथी इस अमारी पटहके कार्यको राजनीति समझते है, यह उनकी बडीभारी भूल है। यदि यह राजनीतिका कार्य होता तो, सभी राजाओंने इस कार्यको करना चाहिये था। और किया तो नहीं है, तो फिर इसको राजनीति कैसे समझी जाय। तेरापंथी क्यों भूलते हैं ? । महाराजा कुमारपालने, क्या कलिकाल-सर्वज्ञ श्रीहेमचंद्राचार्यके उपदेशसे, अपने राज्यमें जीवहिंसा नही बंध करवाई थी ? । मुसलमान पादशाह अकबरने जैनाचार्योंके उपदेशसे क्या एक सालमें छे महिनो तक हिंसा नहीं बन्द की थी ?। क्या इन कार्योंको तेरापंथी, राजनीति समझेंगे ? यह कभी नहीं हो सकता ? । अमारी पटह बजवाकर जीवहिंसा बन्द करवाना यह धर्मकार्य ही है। देखिये प्रश्नव्याकरणसूत्रके पृष्ठ ३३५ से ३३९ में

दया के साठ नाम दिखलाए हैं, उनमें भी ५४ वाँ नाम अमाघाओ है। जिसका अर्थ होता है अनाघात यानि अमारीपटह। अब बतलाइये, इसको अधर्म कैसे कहा जा सकता है ?।

भीखमजीकी बुद्धिका एक और नमूना भी देख लीजिये। भीखमजी कहते हैं कि–" दो स्त्रियाँ कसाईके वहाँ चली गई। एकने अपने पासके आभूषणोंको दे करके एक हजार जीव छोडाये, और एक स्त्रीने कसाईसे विषय भोग करके हजार जीव छोडाये। अब इन दोनोंमें किसीको धर्म नहीं हुआ। क्योंकि–एकने पाँचवा आश्रव सेवन किया और दूसरीने चौथा। फिर दोनोंमेंसे किसीको भी क्यों धर्म होवे ?।"

इससे तो यही मालूम हुआ कि–आश्रव किसका नाम है, यह भी भीषम नहीं जानता था। अच्छा, इस आश्रवके तत्त्वको हम समझावें, उसके पहिले, भीषमजीके, उपर्युक्त दृष्टान्तके प्रत्युत्तरमे एक और दृष्टान्तको सुनलीजिये।

आपकी दो श्राविकाएं, आपके पूज्यजीको वंदणा करनेके लिये जा रहीं थीं। रस्तेमें चोर मिल गये। एक श्राविकाने अपने पासके आभूषणोंको दे करके अपनी जान बचाई, और एकने विषय सेवन करके अपनी आत्मा बचाई। अब बतलाइये, आपके गुरुजी प्रायश्चित्त किसको देगे ?। तुम्हारे हिसाबसे तो दोनोंको देना चाहिये, क्योंकि–एकने पांचवाँ आश्रव सेवन किया है, और एकने चोथा। लेकिन नहीं, जिसने अपने आभूषणोको देदिये है, उसने आश्रवको नहीं सेवन किया, बल्कि, उन आभूषणों परसे मूर्च्छाको उतार दिया है। फिर उसको पांचवाँ आश्रव कैसे कहा जाय ?।

हम तेरापंथियोसे पूछते हैं कि--पांचवा आश्रव कहते किसे हो ? देखो पांचवें आश्रवका नाम है परिग्रह। अब, यह सोचना चाहिये

कि परिग्रह किसको कहते हैं ? । परिग्रह, खान-पान वस्त्र-पात्र इत्यादिको नहीं कहते हैं, किन्तु उनमे की हुई मूर्च्छाको कहते हैं। यदि मूर्च्छाको परिग्रह नहीं मान करके, वस्त्र-पात्र और खाने-पीने वगैरहको ही परिग्रह माना जाय, तो संसारमें किसीको केवलज्ञान होना ही नहीं चाहिये। क्योंकि-सभी मनुष्य, चाहे साधु हों, या गृहस्थ, खाते हैं, पीते हैं और वस्त्र भी रखते हैं। और जिनको केवलज्ञान हो भी गया है, वे भी तो खाते-पीते और वस्त्र रखते थे। फिर उनको केवलज्ञान कैसे, हुआ ? । लेकिन नहीं, वस्त्रपात्रको परिग्रह नहीं कहते हैं, किन्तु मूर्च्छाको परिग्रह कहते हैं। और यही बात, भगवान्के वचनानुकूल है। क्योंकि-भगवान्ने अठारह पापस्थानोको, जिनमें परिग्रह भी है, चारस्पर्शी कहे हैं। और वस्त्र-पात्र वगैरह तो आठ स्पर्शी हैं, फिर इनको (वस्त्र-पात्रादिको) परिग्रह नहीं कहना चाहिये, किन्तु मूर्च्छाको ही परिग्रह कहना चाहिये।

अब छठी ढालको देखिये। छठी ढालके प्रारंभमें लिखा है:—

" जे अणकंपा साधु करे, तो नवां न बांधे कर्म।
तिणमांहिली श्रावक करे, तो तिणने पिण होसी धर्म"॥२॥
" साधश्रावकदोनांतणी, एक अणकंपा जाण।
अमृत सहुने सारखो, तिणरी मकरो ताण" ॥ ३ ॥

इससे यह दिखलाया कि-जो अनुकंपा साधुको करनेकी है, वह अनुकंपा श्रावकको भी करनी चाहिये। जब ऐसा ही नियम है तो फिर, भीखमजीने, किस भंगके नशेमे, चोथी ढालमें ऐसा लिख मारा कि-" साधुके पाँऊ नीचे जीव आता हो, तो दूसरा साथ चलनेवाला साधु उसको दिखावे। लेकिन, गृहस्थके पैर नीचे जीव आता हो, तो उसको दूसरा श्रावक न दिखावे।"

देखिये, भीषमजीका पूर्वापर विरोध । अब, इसके लिये क्या कहा जाय, जिसके वचनका ही ठिकाना नहीं है ! ।

तेरापंथियोंका एक यह भी कहना होता है, कहना क्या होता है, भीषमजीने लिखा भी है कि—' यदि कोई मनुष्य, किसी जीवको मारता हो, तो उसको द्रव्यादि दे करके छोडाना तो दूर किनार रहा, किन्तु 'मतमार' ऐसा भी नहीं कहना चाहिये' । अब बतलाईये । यहाँतक जिसका उपदेश है, उसको क्या कभी मजहब कह सकते हैं ? ।

अच्छा, और देखिये । आठवी ढालमें कहा है:—

" पहिली हिंस्या कीयां पछे धरम बतावै ।
तो कुगुरुवाणी, जेहवी वेहती घाणी " ॥ यां० ॥२०॥

भीखमजीके कहनेका मतलब यह है कि—जिस धर्मके कार्यमें पहिले हिंसा होती हो, तो उस धर्मके कार्यको भी अधर्मका ही समझना चाहिये । हम तेरापंथी साधुओसे पूछते हैं कि—आप लोग जितनी क्रियाएं करते हैं, उन सबमें जीवविराधना—हिंसा होती है कि नहीं ? । अगर होती है तो फिर उन सब कार्योंको अधर्मके कार्य क्यों नहीं कहते ? । तुम्हारे श्रावक लोग, दूरदूरसे अनेक प्रकारके आरंभ समारंभोंके साथ तुम्हारे पूज्यको वंदणा करनेके लिये जाते हैं, उसको भी अधर्मका कार्य क्यों नहीं समझते ? । अनेक प्रकारकी हिंसा करके पाट महोत्सव करते हो, उसको भी अधर्म क्यों नहीं समझते ? बल्कि हम तो यहाँ तक कहते हैं कि—आपको, व्याख्यान वांचना, प्रतिक्रमण पडिलेहण करना, गुरु वंदन करना, गोचरी जाना, ठंडील (जंगल) जाना, उन सभी कार्योंको छोड करके एक जगह पर चुपचाप बैठ जाना

चाहियें। तब कहना ही होगा कि-प्रत्येक कार्यमें लाभालाभ देखा जाता है। जैसे किसी मनुष्यने एक लाख रुपयोंका व्यापार किया। उसमें उसको पांचसौ रुपये महसूलके भी लग जाते हैं, परन्तु व्यापारी इन पांचसौ रुपयोंके खर्चको नहीं देखता है, किन्तु इस व्यापारमें, इसको जो दश-पाच पचीस हजारका फायदा होनेवाला होता है, उसीको देखता है। बस इसी तरहसे, धर्मके कार्योंमें भी कथंचित् हिंसाका दोष लग भी जाय, तो भी विशेष लाभ की दृष्टिसे इसकी गिनती नहीं की जा सकती है। और वह हिंसा भी, स्वरूप हिंसा है, अनुबंध हिंसा नहीं। और जो स्वरूप हिंसा होती है, उसमें पाप बन्ध नहीं होता है।

जो मनुष्य जिस विषयको अच्छी तरह समझा ही नहीं है, वह यदि उस विषयकी चर्चा करने लग जाय, अथवा यों ही कहिये कि-विना समझे ही अनधिकार चर्चामें प्रवेश करे, तो उसको बातबातमें ठोकरें खानी पडती हैं। तेरापंथ-मतके उत्पादक भीखमजी, दया-अनुकंपाका स्वरूप नहीं समझ करके ही अनुकंपाकारास लिखने बैठे मालूम होते हैं। अगर ऐसा न होता तो वे नववीं ढालमें दयाका-अनुकंपाका स्वरूप ऐसा दिखलाते ही क्यों कि:—

"जीव जीवे ते दया नही, मरे ते हो हिंसा मति जाण।
मारण वालाने हिंसा कही, नही मारे हो तेतो दयागुणखाण"॥११॥

हमने मान लिया कि-मारनेवालेको हिंसा कही। परन्तु जो न मारे, उसको दया नहीं कही है। हम तेरापंथियोंसे पूछते हैं कि—

एक मनुष्य जंगलमें शिकार खेलनेको गया है। उसके रोम-रोममें किसी पशुके मारनेका परिणाम हो रहा है, लेकिन वह

पशु, अपने आयुष्यकी प्रबलतासे उस शिकारीके हाथमें नहीं आता है। अब बतलाईये, उस शिकारीको क्या आप लोग उस समय दयालु कहेंगे ? । अगर भीषमजीके वचनको सत्य मानते हो, तो तुम्हे, उसको दयालु ही कहना पडेगा। क्योंकि-उसने पशुको मारा नहीं है। और भीखमजी तो यही कहते हैं कि-' मारे नहीं उसको दया कहो। ' लेकिन नहीं, भीखमका कहना नितान्त झूठा है। यदि ऐसा ही सिद्धान्त जिनशासनका होता, तो 'परिणामसे बन्ध' ऐसा कहा ही न जाता। परमात्माके शासनका तो यही सिद्धान्त है कि-चाहे मनुष्य जीवको मारे चाहे न मारे, परन्तु जबसे उसके, हिंसाके परिणाम होते हैं, तबसे उसको पातक लगता ही है।

तेरापंथियोंके सिद्धान्तसे तो एक यह भी बात निकलती है कि-जो लोग, स्वयं जीवको न मारकर, कसाई वगैरहके वहाँसे तय्यार मांसको ला करके पका खाते है, उनको पातक न लगने चाहिये। क्योंकि-तेरापंथियोका तो सिद्धान्त यही कहता है कि-" जीवको मारे उसीको हिंसा लगती है, और तो सब दयालु ही है।" लेकिन, जब हम जैन और जैनतर शास्त्रोंको भी देखते है, तब तो यही दृष्टिगोचर होता है कि-मारनेवाला अकेला पातकी नहीं है, किन्तु उसके पीछे और भी मनुष्य पातकी बनते हैं। जैसे, हिन्दूओके धर्म ग्रंथोंमे लिखा है:—

" अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः " ॥१॥

अर्थात्—मारनेमें सलाह देनेवाला, मरे हुए जीवोंको शस्त्रसे पृथक् २ करनेवाला, मारनेवाला मोललेनेवाला, बेचनेवाला, सँवारनेवाला, पकानेवाला और खानेवाला ये सब घातक ही कहलाते हैं।

अब बतलाईयें, ‘ मारे नहीं उसको दया कहो, ’ यह सिद्धान्त कैसे सिद्ध हो सकता है? तब कहना ही होगा कि–‘ दया ’ इसीका नाम है कि–“ दुःखितेषु दुःखप्रहाणेच्छा,” अर्थात् दुःखी जीवोको दुःखसे मुक्त करनेकी इच्छाको ‘ दया ’ कहते हैं। दया उसको नही कहते है कि–मूँहपर मुहपत्ती बांध करके किसी स्थानमें बैठ जाना। पहिले दयाके रहस्यको समझना चाहिये। ‘दया दया’ करनेसे दयाका गुण नहीं प्राप्त हो सकता, दया अन्तःकरणके आर्द्र परिणामको कहते है। और मनुष्यमें मनुष्यत्व भी यही है कि–‘ किसी दुःखी जीवको देख करके अपने अन्तःकरणमे दुःखी होना। और इस प्रकार हो करके, उसको दुःखसे मुक्त करनेके लिये प्रयत्न भी करना। ’

अब इस विषयमे भीखमजीके अनुकंपा रासकी विशेष आलोचना करके पाठकोका अधिक समय लेना, व्यर्थ है। क्योंकि–जो मनुष्य, दयाके स्वरूपको समझ ही नहीं सका है, अथवा यो ही कहिये कि–दया किसका नाम है, यह भी नहीं जानने पाया है, वह मनुष्य अपने मनःकल्पित दृष्टान्तोंको देदे कर भद्रिकजीवोंके भावप्राणोंके लेनेका प्रयत्न करे तो इसमे कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। लेकिन बुद्धिमान् लोगोको तो, एकाध बातसे ही, लिखनेवालेके ज्ञानसागरकी थाह अच्छी तरह मिल जाती है। बस, इसी नियमानुसार, भीखमके उपर्युत वचनसे ही विज्ञ पाठकोने, उसके झूठे दृष्टान्त–दलीलोकी कल्पना कर ली होगी, तिसपर भी सन्तोषके लिये, उसके दिये हुए सात दृष्टान्तो पर कुछ विचार कर, अनुकंपा रासकी आलोचनाको खतम करेंगे। और पश्चात् अनुकंपा विषयक और भी दो एक पाठोंको देकर, इस पुस्तककी परिसमाप्ति की जायगी।

अनुकंपारासकी सातवीं ढालमें इस प्रकारके सात दृष्टान्त दिये हैं:—

१ मेंढक–मच्छ वगैरह जीवोंसे भरे हुए पानीके कुंडमें भैंस पानी पीनेको आई।

२ खडे हुए अनाजके ढेरको, जिसमें वहुत जीव है, खानेके लिये एक बकरा आया।

३ जमीनकंदसे भरे हुए गाडेको देखकर एक बैल खानेके लिये आया।

४ अनछने कच्चे पानिके घडे भरे हुए पडे हैं, उनको देख एक गाय पानी पीने आई।

५ किसी सडे हुए खातमें बहुत जीव पडे हैं, उनको खानेके लिये कुर्कुट (कूकडे) वगैरह जीव आए।

६ एक स्थानमें वहुत चूहे फिर रहे हैं, उनको पकडनेके लिये बिल्ली आई।

७ खांड–गुडके ऊपर वहुत मक्खियें बैठी है, उनको पकडनेके लिये मकोडे आये।

अब तेरापंथी, कहते हैं कि–" साधु, इन सातो प्रसंगोमें मौन रहे। क्योंकि–उसका तो समस्त जीवोंपर समभाव है, फिर चाहे एकेन्द्रिय हो, चाहे पंचेन्द्रिय। "

लेकिन तेरापंथियोने ऐसा समभाव दिखलाकर बडा भारी अनर्थ किया है। साधु, कहाँपर मौन रहे? और कहाँपर जीवोंके बचानेका प्रयत्न करे, यह खास समझनेका विषय है। और यह बात तब ही समझी जा सकती है, जब कि–जीवोके एकेन्द्रियादि भेद समझे जाँय। तेरापंथियोंमें इस प्रकारका ज्ञान नहीं होनेसे ही वे ऐसे

२ अनर्थ कर बैठे हैं। जीव एकेन्द्रियसे ले करके पंचेन्द्रिय पर्यन्त होते हैं। और एक एक इन्द्रियके बढते जानेसे उनका पुण्य भी बढता जाता है। अर्थात् एकेन्द्रियसे बेइन्द्रियका, बेइन्द्रियसे ते इन्द्रियका, तेइन्द्रियसे चउरिन्द्रियका, और चउरिन्द्रियसे पंचेन्द्रियका पुण्य कई गुना अधिक है। पचेन्द्रियमें भी सबका समान नहीं। ज्यों २ अधिकार बढता जाता है, त्यों २ पुण्यमें भी आधिक्य माना जाता है। जैसे आचारांगनिर्युक्तिमे कहा है: —

" सत्तविराहणपावं असखगुणीयस्स एगभूयस्स।
भूयस्साणंतगुणं पावं इक्कस्स पाणस्स ॥ १ ॥
बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिय तहेय चेव पंचिंदी।
लक्खसहस्सा तह सय गुणंतपावं मुणेयव्वं " ॥ २ ॥

अर्थात्—असख्यातगुणे पृथ्वी-अप्-तेज-वाऊ कायके सत्त्वोंके हननेसे एक वनस्पति कायके भूतको हननेका पाप लगता है। और अनन्तगुणे भूत वनस्पतिकायके हननेसे एक बेइंद्रिय प्राणके हननेका पाप लगता है। लक्ष बेइंद्रियके विनाशसे एक तेइन्द्रियके हननेका पाप लगता है। हजार तेइन्द्रियके विनाशसे एक चउरिंद्रियका पाप लगता है। सौ चउरिंद्रियके नाशसे एक पंचेंद्रियका पाप लगे।

कहनेका मतलब यह है कि—इस प्रकार जीवाके भेदोंको समझ करके ही साधुको ऐसे कार्योंमें प्रवृति करनेकी है। साथ ही साथ दूसरी बात यह भी है कि—साधुको लाभालाभ भी देखना चाहिये अमुक कार्यके करनेसे कितना लाभ है ? और कितना नुकशान ? इसको भी अवश्य सोचना चाहिये। यदि इन बातोंको विना सोचे, विना समझे, सभी विषयोंमें समभावकी ही माला जपने लग जॉय,

तो संसारमें साधुके हृदयमें दयाका नाम तक रहने न पावे। इस लिये विचार करनेसे मालूम होगा कि–तेरापंथियोके दिये हुए उपर्युक्त सातो प्रसंगोंमें समानता हर्गिज नहीं हैं। उनमें कई प्रसंग, साधुको मौन रहने लायक है, और कई बचाने लायक। क्योंकि जहाँ जैसा अधिकार–जैसा लाभ है, वहाँ वैसी ही प्रवृत्ति करनी चाहिये।

सक्षेपसे कहनेका तात्पर्य इतना ही है कि–भिखमजीने, उपर्युक्त सात प्रसग विना समझे ही दिये हैं। इसी प्रकार पांचवीं ढालमें सौ सौ मनुष्योंको, अन्न खिला कर, पानी पिला कर, हुका पिला कर, वगैरह एकेन्द्रिय जीवोंकी हिंसा पूर्वक बचानेके सात दृष्टान्त दिये हैं। लेकिन, वे भी, भीखमकी अज्ञानताको ही जाहिर करते है कि उसमे यह ज्ञान था ही नहीं कि– एकेन्द्रिय जीवोकी हिंसा होते हुए भी पंचेन्द्रियके बचानेमे कितना लाभ होता है ?।

इन सात दृष्टान्तोंमें तो भीखमजीने एक और भी रीतिसे, अपने पांडित्य (!) का परिचय कराया है। वह यह है कि– बहुतसे दृष्टान्त तो असंभवित ही दिये हैं। देखिये, क्या यह कभी हो सकता है कि–सौ मनुष्य मुले–गाजर खाकरके ही बचें, और किसी उपायसे न बचे ?। क्या यह कभी माना जा सकता है कि– सौ बीमार मनुष्य हुक्केके पीनेसे ही बचे, और किसी उपायसे न बचें ?। और, क्या कभी किसीने सुना भी है कि–मरते हुए सौ मनुष्योंको बचानेके लिये किसी एक मनुष्यके मस्तकमेंसे ममाई निकाली जाय ?। लेकिन बहादुरी है भीखमजीकी, कि जिन्होने भोले जीवोंको फँसानेके लिये ऐसे असंभवित भी दृष्टान्त दे दिये हैं। (ममाई मनुष्यके मस्तकमेंसे बनाई जाती है, यह भी बात झूठी है। ममाई, किसी अन्य पदार्थसें बनाई जाती है, ऐसा वैद्योंका अभिप्राय है।)

अच्छा, अभी एकाध बात और भी सुन लीजिये। तेरापंथियोंका एक यह भी सिद्धान्त है कि–" कोई मनुष्य आकरके साधुके गलेमें फांसी दे गया है, और साधुजी बडे कष्ट पाते हों, तो भी साधुजीके गलेमेंसे फांसी नहीं खोलनी चाहिये। " खूब कहा। साधुजीकी फांसी खोलनेमें कौनसा पाप लग जाता है ?। यदि यह कहा जाय कि–' साधुजी महाराज अपने कर्मोंको भोग रहे हैं, उसमें अन्तराय नहीं करनी चाहिये।' लेकिन, यह कहना बिलकुल असत्य है। क्योंकि–यदि ऐसा ही है तो फिर हम तेरापंथियोंसे पूछते हैं कि–तुम अपने साधु साध्वियोंको आहारपानी क्यों देते हो ? उनको, अपने कर्मोंको भोगने दीजिये। मालमसाले और पानी देकरके, कर्मोंको भोगनेमें अन्तराय क्यों करते हो ?। जब तुम्हारे साधु-साध्वी बीमार पडते हैं, तब डॉक्टर या वैद्यके लिये दौड-धूप क्यों करते हो ?।' उनको अपने कर्मोंको अच्छी तरह भोगने दीजिये। तब कहना ही होगा कि–साधु मुनिराज इस बातको न चाहें कि–' मेरी फांसी कोई खोले '। परन्तु गृहस्थोंका यह धर्म है कि–फांसीको खोल करके साधुको शाता पहुँचावे। जैसे, उत्तराध्ययनसूत्रके, ३५ अध्ययन, पृ० १०१२ में कहा है कि —

" अच्चणं सेवणं चेव वंदणं पूयणं तहा।
इड्ढीसक्कारसम्माणं मणसावि न पत्थए " ॥ १८ ॥

अर्थात्—साधु, अपना, अर्चन, सेवन, वंदन, पूजन तथा ऋद्धि, सत्कार-सन्मान, इनकी मनसे भी अभिलाषा न करे। फिर वचन-कायकी तो बातही क्या ?)

अब बतलाईये, साधु, वंदन-पूजनको न चाहे, तिसपर भी उसको गृहस्थ लोग वंदन-पूजन करते हैं, उस समय निषेध नहीं

किया जाता है, बस, इसी प्रकार साधु, यद्यपि फांसी खुलवानेकी भावना न करे, तो भी गृहस्थोंका धर्म है कि–साधुकी फांसी खोलें।

संसारमें देखनेसे मालुम होता है कि–मनुष्य ही नहीं, बल्कि प्राणि मात्र अपने २ प्राकृतिक–स्वाभाविक धर्मोंको पालन करते ही है। इसकी दृढताके लिये, पाठक, एक छोटेसे दृष्टान्तको यहाँ सुन ले।

"एक समयकी बात है। एक बिच्छू, अत्यन्त उष्ण रेतीमें पडा हुआ बहुत कष्ट पा रहा था। एक छोटे लडकेने उसको देखा। और लडकेको बचपनसे यह शिक्षा मिली हुई थी कि–कोई भी जीव यदि कष्ट पा रहा हो, तो उसको कष्टसे मुक्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये। लडकेने झटसे बिच्छूको पकडा, और छायामे रख दिया। कहनेकी आवश्यक्ता नहीं है कि–बिच्छूका क्या स्वभाव होता है?। लडकेने ज्योंही बिच्छूको पकडा, त्योंही उसके हाथमें डंक मारा। थोडी देरके बाद वही बिच्छू फिर उष्ण रेतीमें आ गया और दुःखी होने लगा। दूसही दफे भी लडकेने उठा कर छायामें रख दिया, और बिच्छूने काटा भी। ऐसे तीन बार लडकेने बिच्छूको उठाया, और तीनों बार बिच्छूने काटा। उस समय वहाँ एक मनुष्य खडा था, उसने उस लडकेसे कहा–अरे! यह क्या तेरेको सूझा है?। तीनों-दफे तुझको बिच्छूने काट खाया, लेकिन फिर भी तू उसको उठा उठा कर अलग रखता है?। तब उस लडकेने यही जवाब दिया, कि–'देखिये बिच्छू जैसा प्राणी भी अपने स्वाभाविक धर्मको नहीं छोडता है,' तो भला, मैं मनुष्य हो करके, अपने स्वाभाविक धर्मको कैसे छोड सकता हूँ। अर्थात् बिच्छू, अपने काटनेके धर्मको पालन कर

रहा है, तो फिर मैं मेरे दया धर्मको (जो कि—मनुष्योंके अन्तःक-रणमें स्वाभाविक ही रहा हुआ है) कैसे छोडूं।

कहनेका मतलब यह है कि—चाहे साधु हो, चाहे गृहस्थ, अगर वह किसी आफतमें आ फँसा हो, तो उसको अवश्य छोडने-छोडा-नेका प्रयत्न करना ही चाहिये फिर चाहें वह (फँसा हुआ मनुष्य), अपने अन्तःकरणमें कैसी ही भावना रखता हो।

बहुतसे तेरापथी, वंदितासूत्रकी

" सुहिएसु अ दुहिएसु अ जा मे असंएसु अणुकंपा
रागेण व दोसेण व निंदे तं च गरिहामि " ॥३१॥

इस गाथाको आगे करके कहते हैं कि—" देखो, इस गाथामें असंयतीमें अनुकंपा की हो, उसकी निंदा—गर्हा की है।" लेकिन यह समझना भूल है। इस गाथामे बडा भारी रहस्य रहा हुआ है। पहिले इसका अर्थ समझ लेना चाहिये। इसका अर्थ यह है:—

" सुखी अथवा दुःखी, ऐसे असंयतीमें, राग या द्वेषसे जो अनुकंपाकी हो, उसकी मैं निंदा—गर्हा करता हूँ। "

इस गाथामें, असंयतीकी अनुकंपा करनेमें दो कारण दिखला कर उन दो कारणोंकी निंदा की है। वे दो कारण हैं राग और द्वेष। जैसे, कोई अपना स्वजनादिक असंयती हो, और उसपर प्रेम—रागसे जो अनुकंपा की हो, उसकी निंदा है, और 'द्वेष'से यह है कि—जैसे किसी असंयतीको, ' देखो तुम तो हमारे शासनके द्रोही हो—प्रत्य-नीक हो, तिसपर भी हम तुमको देते हैं ' ऐसे द्वेषपूर्वक अनु-कंपा की जाय, उसकी निंदा है।

अब, विशेष स्पष्ट करनेकी आवश्यकता ही नहीं है कि—यह निंदा अनुकंपा की नहीं, किन्तु राग—द्वेष की है। लेकिन, इस राग-

द्वेषकी निंदासे, यह कभी नहीं निकल सकता है कि–करुणा बुद्धिसे असंयती जीवोंपर अनुकंपा नहीं करनी चाहिये ।

उपर्युक्त गाथाके, ' वंदारुवृति ' 'श्राद्धप्रतिक्रमणवृति,' 'धर्मसंग्रहवृत्ति'-वगैरह ग्रंथोंमें तीन प्रकारके अर्थ किये हैं, परन्तु उन तीनों प्रकारके अर्थोंमें ' राग–द्वेषकी ही निंदा–गर्हा ' होनेसे तीनोंमेंसे एक ही अर्थ यहाँ पर दिया गया है । विशेष जाननेकी इच्छा होवे, वे उन ग्रन्थोको देख सकते है ।

जब मनुष्यका, येन केन प्रकारेण अपनी बातके रखनेका ही इरादा होता है, तब यह शब्दार्थ वा प्रकरणके ऊपर खयाल नहीं रखता है । यही हाल तेरापंथियोंका भी है ।तेरापंथी कहते हैं कि–

"भगवतीसूत्रके आठवे शतकके पांचवे उद्देशेमे असंयतिके पोषणका निषेध किया है । " लेकिन यह बिलकुल असत्य बात है । तेरापंथी उस प्रसंगको समझे ही नहीं है । बात यह है:–

भगवतीसूत्रके आठवे शतकके पांचवें उद्देशेमें, पनरह कर्मादानोंका प्रसंग चला है । उन पनरहकर्मादानोंमे ' असईपोसणया ' ऐसा भी नाम है । देखिये वह पाठः—

" ईंगालकम्मे वणकम्मे साडीकम्मे भाडीकम्मे फोडीकम्मे दंतवाणिज्जे लक्खवाणिज्जे केसवाणिज्जे रसवाणिज्जे विसवाणिज्जे जंतपीलकम्मे निलछणकम्मे दवग्गिदावणिया सरदहतलावपरिसोसणया असईपोसणया " (पत्र ६०९)

इन पनरह कर्मादानोंमें, पनरहवाँ 'असईपोसणया' दिखलाया है । इसका अर्थ ' असंयतीका पोषण ' नहीं होता है, किन्तु ' असतीका पोषण ' होता है। और इस असतीके पोषण करनेके लिये भगवान्ने निषेध फरमाया है । अर्थात् जैसे चौदह प्रकारोंके व्या-

पारोंका भगवान्‌ने निषेध फरमाया, वैसे 'असती' के व्यापारका भी निषेध दिखलाया। जैसे कोई मनुष्य, अनेक दासियोंको रक्खे, और उनको किराये पर दूसरोंको दे कर पैसा पैदा करे, इस व्यापारका निषेध किया है। और टीकाकार भगवान्‌ने भी 'असयपोसणया' का यही अर्थ किया है कि:—

"दास्याःस्तद्भाटीग्रहणाय, जनेन च कुक्कुटमार्जारादिक्षुद्र जीवपोषणमप्याश्रितं दृश्यमिति"

टीकाकार भगवान्‌ने दासीके उपरान्त कुक्कुटमार्जारादि क्षुद्रजीवोंके पोषणका भी ग्रहण कर लिया है। ठीक है, यह व्यापार भी निंदनीय ही है। अब यहाँपर असयतीके पोषणका प्रसंग ही क्या है?

विचारनेकी बात है कि–उपर्युक्त पनरहकर्मादान, श्रावकके सातवें व्रत भोगोपभोग के अतिचारमें गिनाए हैं। और 'असई-पोसणया' का अर्थ कदाचित 'असंयतीका पोषण' किया जाय, तो आनन्दादि जिन २ श्रावकोंने बारहव्रत अंगीकार किये थे, उनकी करणीमें असयतीका पोषण होना ही नहीं चाहिये। लेकिन हम जब उनकी करणीको देखते हैं, तब तो ऐसा मालूम होता है कि—उन व्रतधारी श्रावकोंने भी गाय–भैंस–बैल वगैरह पशुओंका रक्षण किया है और दास–दासियोंका भी पोषण किया है अब बतलाईये कि, बारह व्रतधारी होनेपर उन्होंने, उन असंयतीयोंका पोषण क्यों किया? । लेकिन, नहीं, कहना होगा कि, यहाँपर 'असईपोसणया' का अर्थ, 'असंयतीका पोषण' नहीं है, किन्तु 'असतीका पोषण' है। और 'असतीपोषण' व्यापार निमित्त किया जाय, तब ही वह पनरह कर्मादानोंके अन्दर

गिना जा सकता है। अतएव तेरापंथी जो अर्थ करते हैं, वह बिलकुल असंगत ही है।

अब एक और बात देख लीजिये। निशीथसूत्रके बारहवें उद्देशेमें इस प्रकारका पाठ है:—

"जे भिक्खू कोलुणपडियाए अणयरं तसपाणजायं तणपासएण वा मुंजपासएण वा कट्ठपासएण वा चम्मपासएण वा वेत्तपासएण वा रज्जुपासएण वा सुत्तपासएण वा बंधइ बंधंतं वा साइज्जइ, जे भिक्खू बंधेलयं वा मुयइ मुयंतं वा साइज्जइ—

इस पाठको लेकरके तेरापंथी कहते हैं कि—" करुणा (अनुकंपा) करके किसी त्रस जीवको बांधे-बंधावे और बांधतेको अच्छा जाने, उसको चौमासी प्रायश्चित्त आवे, और अनुकंपासे छोडे-छोडावे और छोडतेको अच्छा जाने, उसको भी चौमासी प्रायश्चित्त आवे, ऐसा सूत्रमे कहा है।"

प्रथम तो तेरापंथी 'कोलुणपडियाए' का अर्थ ही नहीं समझे हैं। और दूसरे साधुके लिये यह प्रसग कब संभवित हो सकता है, इसको भी नहीं विचारा है। अस्तु, पहिले उपर्युक्त पाठके अर्थको देख लीजिये। उपर्युक्त पाठका अर्थ यह है:—

"जो कोई साधु, कोलुणपडियाए अर्थात् कारुण्यप्रतिज्ञासे अन्य त्रस प्राणीकी जातिको, तृणके बंधसे, मुंजके बंधसे, काष्टके बंधसे, चमडेके बंधसे, वेत्रके बंधसे, रज्जुके बंधसे, अथवा सूत्रके बंधसे बांधे, अथवा बांधनेवालेको सहायता करे तो, एवं बांधे हुए को छोडे अथवा छोडनेवालेको सहायता करे तो चौमासी प्रायश्चित्त आवे।"

अव्वल तो तेरापंथी उपर्युक्त पाठका अर्थ ही झूठा करते हैं। क्योंकि—उपर्युक्त पाठमेंसे यह नहीं निकलता है कि—" बांधे-

बंधावे और बांधने वालेको अच्छा जाने, तथा छोडे छोडावे और छोडने वालेको अच्छा जाने उसको चौमासी प्रायश्चित्त आवे।" उपर्युक्त पाठमेंसे तो " बांधे और बांधनेवालेको सहायता करे, छोडे और छोडनेवालेको सहायता करे उसको चौमासी प्रायश्चित्त आवे" यही अर्थ निकलता है। यदि इस अर्थपर तेरापंथियोने खयाल रक्खा होता, तो उन्हें मालूम हो जाता कि–साधुके लिये ऐसा प्रसंग कब उपस्थित हो सकता है?। क्योंकि–साधु गृहस्थसंबंधि समस्त कार्योंसे पृथक् हो गये हैं। अतएव उन्हे न किसी त्रस जाति (गाय–भेस वगैरह) के बाधने छोडनेका काम पडता है, और न उनके पासमे तृण, मुञ्ज, काष्ट, चाम, वेत्र, वगैरह के बंधन (रस्सीएं) ही रहते हैं। फिर भी ऐसे प्रसंगमे प्रायश्चित्त क्यों कहा?। इसके लिये ऐसा प्रसंग खोजना पडेगा और वह यही प्रसग मालूम होता है कि—जैसे,

कोई साधु गृहस्थके घरपर भिक्षाके लिये चला गया हो। उस समय साधु भिक्षाकी लालचसे, यह विचार करे कि–'इसके गाय–भैंसको बाँधूं तो यह मुझको अच्छी तरह भोजन देगा।' ऐसा विचार करके उसके गाय भैंसको बांधे, अथवा गृहस्थ बांधता हो तो सहायता करे, एवं छोडे अथवा छोडता हो तो सहायता करे। बस ऐसे प्रसंगोके लिये चौमासी प्रायश्चित्त कहा है। और इसी लिये, 'कोलुणपडियाए' पाठ दिया है, जिसका अर्थ होता है 'कारुण्यप्रतिज्ञासे।' अर्थात् यहाँपर साधुके मनका यह अभिप्राय है कि—यदि मैं इसका काम करुंगा, तो मेरे पर अनुकंपा लाकर अच्छी तरह आहार देगा। लेकिन इससे अनुकंपाका निषेध नहीं होता है। यदि यह प्रसंग अनुकंपाके लिये होता, अर्थात् साधुके पशुओंको बांधने–छोडनेमें अनुकंपा

दिखलाई होती, तो 'कोलुणपडियाए' पाठ न होता, किन्तु 'अणुकंपयणट्ठाए' ऐसा पाठ होता, और ऐसा है तो नहीं। तब कहना होगा कि–यह प्रायश्चित्त इसी लिये दिखलाया है कि–साधुको भिक्षाके लिये किसी प्रकारकी मूर्च्छा रखनेका निषेध होनेपर मूर्च्छा की और दूसरे अपने भिक्षाके स्वार्थके लिये गृहस्थका काम किया।

इस लिये निशीथके उपर्युक्त पाठको ले करके तेरापन्थी अनुकंपाका निषेध करते हैं, यह भी उनका भ्रमप्रदर्शक ही है।

अच्छा एक और पाठको भी देख लीजिये। भगवतीसूत्रके श० ८, उ० ६, पत्र ६१० से ६१२ में इस प्रकारके तीन पाठ हैं:–

"समणोवासगस्स णं भंते! तहारूवं समणं वा माहणं वा फासुएसणिज्जेणं असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभेमाणस्स किं कज्जइ? गोयमा! एगंतसो से निज्जरा कज्जइ, नत्थि य से पावे कम्मे कज्जइ।"

"समणोवासगस्स णं भंते! तहारूवं समणं वा माहणं वा अफासुएणं अणेसणिज्जेण असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभेमाणस्स किं कज्जइ? गोयमा! बहुतरिया से निज्जरा कज्जइ, अप्पतराए से पावे कम्मे कज्जइ।"

"समणोवासगस्स णं भंते! तहारूवं असंजयअविरयअपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे फासुएण वा अफासुएण वा एसणिज्जेण वा अणेसणिज्जेण वा असणपाणजाव किं कज्जइ? गोयमा! एगंतसो से पावे कम्मे कज्जइ, नत्थि से काइ निज्जरा कज्जइ।"

उपर्युक्त पाठोंके अर्थ ये हैं:—

" हे भगवन् ! तथारूप श्रमण माहणको फासुएषणीय, अशन–पानखादिम–स्वादिम देनेसे श्रमणोपासकको क्या होता है ?, हे गौतम ! एकान्त निर्जरा होती है, पाप कर्म नहीं होता है। "

" हे भगवन् तथारूप श्रमण–माहणको अफासु, अनेषणीय अशन–पान–खादिम–स्वादिम देनेसे श्रमणोपासकको क्या होता है ?, हे गौतम ! बहुत निर्जरा होती है और अल्पतर पापकर्म होता है। "

" हे भगवन् ! तथारूप असंयती–अविरती तथा जिसने प्रत्याख्यान करके पापकर्मको दूर नहीं किया है, ऐसेको, अर्थात् अप्रत्याख्यानीको, फासु या अफासु, एषणीय या अनेषणीय, अशन–पान–खादिम–स्वादिम देनेसे, श्रमणोपासकको क्या होता है ? हे गौतम ! एकान्त पाप कर्म होता है, निर्जरा बिलकुल नहीं होती है।"

अब तेरापंथीलोग, इन तीनों पाठोंमेंसे प्रथमके दो पाठोंको छिपा करके तीसरे पाठको आगे करते हैं। और कहते हैं कि– ' देखो भगवतीसूत्रमें भी असंयती–अविरतीको दान देनेसे एकान्त पाप दिखलाया है।' परन्तु इन तीनों पाठोंमें, जोकि एक साथ दिये हुए हैं, बडा भारी रहस्य रहा हुआ है। वह यह है उपर्युक्त तीनों पाठ मोक्षफलकी विवक्षासे दिये हुए हैं। क्योंकि–यहाँ सुपात्रदानकी बात चली है। और जो सुपात्र दान होता है, उसका फल मोक्ष दिखलाया है। और यही बात भगवान् टीकाकारने भी यों लिखी है:—

" सूत्रत्रयेणापि चानेन मोक्षार्थमेव यद्दानं तच्चिन्तितं, यत्पुनरनुकम्पादानमौचित्यदानं वा तन्नचिन्तितम् " (पृ० ६१२)

अर्थात्–उपर्युक्त तीनों सूत्रोंमें मोक्षार्थ दानका ही विचार किया गया है। और अनुकम्पा और उचितदान की यहांपर चिन्ता नहीं

की गई है। और विचार करनेसे भी मालूम हो सकता है कि-यदि यहाँपर मोक्षार्थ दानकी वात न चली होती तो प्रथमके दो पाठोंमें श्रमण-माहणको देनेकी वात न कहते-किन्तु सामान्य ही कहते। जब यह वात स्पष्ट हुई कि-ये तीनो पाठ मोक्षार्थ दानके लिये ही दिये हुए हैं, तब इस तृतीयपाठमें भी मोक्षार्थ दानकी ही अपेक्षा की गई है। और यह तो हम भी स्वीकार करते हैं कि-यदि असंयमी-अविरति-अप्रत्याख्यानी को, सुपात्र समझ करके-गुरु समझ करके-गुणवान् समझ करके दान दिया जाय, तो इससे एकान्त पाप अवश्य ही होता है। लेकिन इससे अनुकंपाका निषेध हर्गिज नहीं हो सकता। हां, यहाँ अनुकंपाका प्रकरण चला होता-अनुकंपाकी विवक्षा की गई होती, तो जरूर हम अनुकंपासे एकान्त पाप मान लेते। परन्तु यह तो है ही नहीं। और होवे भी कैसे? क्योंकि-अनुकंपाका तो निषेध, कहीं पर भी भगवान्ने नहीं किया है। देखिये, उपर्युक्त तीसरे पाठकी टीकामें भी कहा है:-

"मोक्खत्थं जं दाणं तं पइ:एसो विही समक्खाओ।
अणुकंपादाणं पुण जिणेहिं न कयावि पडिसिद्धं" ॥१॥

अर्थात्-यह विधि (उपर्युक्त तीनपाठोंकी), मोक्षार्थ दानके प्रति कही हुई है। और अनुकंपा दानका प्रतिषेध तो कहीं पर तीर्थंकरोंने नहीं किया है।

जब ऐसा ही है तो फिर अनुकंपासे एकान्त पाप कैसे माना जा सकता है?।

उपर्युक्त तीनो पाठोंमें, (तीसरे पाठमें भी) अनुकंपा दानका वर्णन नहीं है, किन्तु, गुरु-साधु-पात्र मान करके दे, इसका वर्णन है, ऐसा माननेमें एक और भी कारण है। वह यह है:—

पहिलेके दो पाठोंमें, दान देनेवालेका नाम श्रमणोपासक रक्खा है, वैसे ही तीसरे पाठमें भी श्रमणोपासक ही दिखलाया है। इसी प्रकार, जैसे प्रथमके दो पाठोंमें 'पडिलाभेमाणे किं कज्जइ ?' यह प्रश्न किया गया है, वैसे ही तीसरे पाठमें भी 'पडिलाभेमाणे किं कज्जइ ?' यही प्रश्न किया गया है।

अब विचारनेकी बात है कि-'पडिलाभे माणे' यह शब्दप्रयोग वहाँ ही होता है, जहाँ पूज्यबुद्धिसे-गुरुबुद्धिसे दान दिया जाता है। और जहाँ अनुकंपाकी बुद्धि होती है, वहाँ 'पडिलाभेमाणे' यह शब्द कहा ही नहीं जाता है। सूत्रोंमें जहाँ २ दानशालाओं वगैरहके कार्य दिखलाए हुए हैं, जोकि खास अनुकंपाकी बुद्धिसे किये जाते हैं, वहाँ 'पडिलाभेमाणे' यह शब्द मिलता ही नहीं है।

प्रचलित व्यवहारपर ख्याल करनेसे भी मालूम हो सकता है कि जैसे साधु-मुनिराजको यह कहा जाता है कि-महाराज 'लाभ दीजिये' वैसे किसी रंक-दुर्बल-दुःखी मनुष्यको कुछ देनेकी इच्छा होती है, तब यह कहा नहीं जाता है कि—'आप लाभ दीजिये'। क्योंकि, यहाँ 'अनुकंपा' का प्रसंग है, और साधु-मुनिराजको, देनेके समय गुरुत्वबुद्धिका--सुपात्रदानका प्रसंग है।

तब कहना होगा-मानना पडेगा कि—तीसरे पाठमें भी प्रसंग तो मोक्षार्थदान ही है, परन्तु, असंयती-अव्रती होनेपर भी उसमें गुरुत्वबुद्धि-पात्रबुद्धि रख करके देनेसे एकान्त पाप दिखलाया है। और अनुकंपा दानके लिये तो पात्रापात्रके विचार ही करनेकी आवश्यकता नहीं दिखलाई है, तो फिर निषेध करनेकी तो बात ही क्या ? जिसकी पुष्टि हम पहिले अच्छी तरह कर आए हैं, इस लिये पुनः लिखनेकी आवश्यकता ही क्या है ?

प्यारे पाठक, यहाँतक तो हमने तेरापंथियोंकी ही युक्तियोंको तथा वे सूत्रोंके जिन पाठोंको आगे करते हैं, उन्हींपर विचार किया। अब हम अन्तमें अनुकंपाकी पुष्टिके और कतिपय प्रमाण लिख कर इसको समाप्त करेंगे।

ठाणांगसूत्रके दशवें ठाणे के पाठको देख लीजिये। ठाणांगसूत्रके दशवें ठाणेमें दश प्रकारके दान दिखलाए हैं। वे दान ये हैं:—

" अणुकंपा संगहे चेव भयाकालुणिए ति य।
लज्जाये गारवे णं च अधम्मे पुण सत्तमे ॥ १ ॥
धम्मे य अट्ठमे वुत्ते काहिई य कयं ति य "।

१ अनुकंपादान, २ संग्रहदान, ३ भयदान, ४ कारुण्यदान (शोकदान), ५ लज्जादान, ६ गौरवदान, ७ अधर्मदान, ८ धर्मदान, ९ करिष्यतिदान और १० कृतदान।

इन दश प्रकारके दानोंमें सबसे प्रथम 'अनुकंपा' दानको रक्खा गया है। इस अनुकंपा दानका स्पष्टीकरण करते हुए टीकाकार भगवान् भी कहते हैं कि:—

" अनुकंपया कृपया दानं दीनानाथविषयमनुकंपादानम्, अथवा अनुकंपातो यद्दानं तदनुकंपादानम्। "

अर्थात् अनुकंपासे—कृपासे दीन—अनाथ—संबंधि जो दान है, उसको, अथवा दयासे जो दिया जाता है, वह अनुकंपा दान है।

फिर येही टीकाकार श्रीउमास्वातिवाचकजीके शब्दोंमे भी कहते हैं कि:—

" कृपणेऽनाथदरिद्रे व्यसनप्राप्ते च रोगशोकहते।
यद्दीयते कृपार्थादनुकंपा तद्भवेद्दानम् " ॥ १ ॥

अर्थात्—कृपण, अनाथ, दरिद्र, दुःखप्राप्त और रोग—शोकसे हनाये हुएको दयासे जो दिया जाता है, वह अनुकम्पादान है।

अब बतलाईये, ऐसे अनुकंपा दानका क्योंकर निषेध हो सकता है? फिर आगे चलीये।

उत्तराध्ययन सूत्रके २१ वें अध्ययनमे कहा है कि:—

" सव्वेहिं भूएहिं दयाणुकंपी खंतीखमे संजयबंभयारी।
सावज्जजोगं परिवज्जयंतो चरिज्ज भिक्खू सुसमाहि इंदिए॥१३॥
(पृ० ६४५)

अर्थात्—समस्त भूतोंमें हितोपदेशरूप दया करके, अनुकंपा करनेका स्वभाववाला, तत्त्वचिंतवनरूप क्षान्ति करके दुर्वचन—ताडनादि रूप उपसर्गोंको सहन करनेवाला, संयमी, ब्रह्मचारी, सावद्ययोगोंका परित्याग करनेवाला और वशीकृत है इन्द्रियाँ जिसकी ऐसा होके साधु विचरे।

अब देखिये, इस गाथामें समस्त जीवोंकी अनुकंपा करनेका और हित वाञ्छनेका कहा। फिर भी अनुकंपाका निषेध हो, यह बडे आश्चर्य की बात है।

कदाचित् कोई यह कहे कि—" उपर्युक्त गाथामें तो अनुकंपा करनेको कहा, परन्तु दुःखी जीवोंको दुःखसे मुक्त करनेका और शाता उपजानेको तो नहीं कहा?।" लेकिन नहीं, यह भूल है। जीवको नहीं मारना, उसीका नाम अनुकंपा—दया नहीं है, किन्तु जीवकी रक्षा करना—बचाना—दुःखमेंसे मुक्त करना इसका नाम अनुकंपा—दया है। अगर ऐसा न होता तो, भगवान् भगवतीसूत्रके सातवें शतकके छठवें उद्देशेमे, प्राणातिपात, प्राणातिपातविरमण, प्राणानुकंपा और परपीडन इन चार प्रकारके कारणोंसे चार प्रकारके कर्म रूप कार्य कभी न दिखलाते। क्यों-

कि–' नहीं मारना ' और ' अनुकंपा ' ये दोनों एक ही अर्थके सूचक होते तो, प्राणातिपात विरमण (जीवको मारनेसे हटना) से अकर्कश वेदनीयकर्म और प्राणकी अनुकंपासे शातावेदनीयकर्म, ऐसे भिन्न २ कर्म भगवान् नहीं दिखलाते। देखिये इस पाठको:–

" अत्थि णं भंते ! जीवाणं कक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ? हंता अत्थि। कहण्णं भंते ! जीवाणं कक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ? गोयमा ! पाणाइवाएणं जाव मिच्छादंसणसल्लेणं, एवं खलु गोयमा ! जीवाणं कक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति। अत्थि णं भंते ! नेरइयाणं कक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ? गोयमा ! एवं जाव वेमाणियाण ॥ अत्थि णं भंते ! जीवाणं अकक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ? हंता अत्थि। कहण्ण भंते ! जीवाण अकक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ? गोयमा ! पाणाइवायवेरमणेणं, जाव परिग्गहवेरमणेणं, कोह विवगेण, जाव मिच्छादंसणसल्लविवेगेणं, एवं खलु गोयमा ! जीवाणं अकक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति। अत्थि णं भंते ! नेरइयाणं अकक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ? णो इणट्ठे समट्ठे, एवं जाव वेमाणियाणं, ण वरं मणुस्साणं जं जीवाणं ॥ अत्थि णं भंते ! जीवाण सायावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ? हंता अत्थि। कहण्णं भंते ! जीवा सायावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ? गोयमा ! पाणाणुकंपयाए, भूयाणुकंपयाए, जीवाणुकंपयाए, सत्ताणुकंपयाए, बहूणं पाणाणं जावसत्ताण अदुक्खणयाए, असोयणयाए, अजूरणयाए, अतिप्पणयाए, अपिट्टणयाए, अपरियावणयाए, एवं खलु गोयमा ! जीवाणं सायावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति, एवं नेरइयाण त्ति, जाव वेमाणियाणं ॥ अत्थि णं भंते ! जीवाणं असायावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ?

हंता अत्थि । कहण्ण भंते ! जीवाणं असायावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ? गोयमा ! परदुक्खणयाए, परसोयणयाए, परजूरणयाए, परतिप्पणयाए, परपिट्टणयाए, परपरितावणयाए, बहूणं पाणाण जाव सत्ताणं दुक्खणयाए, सोयणयाए, जाव परियावणयाए, एव खलु गोयमा ! जीवाणं असायावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति, एव नेरइयाणवि, जाव वेमाणयाणं ॥ "

(पत्र ४७५ से ४७७)

अर्थात्–हे भगवन् ! जीव, कर्कश वेदनीयकर्म उत्पन्न करे ! करे । हे भगवन् ! जीव कर्कश वेदनीय कर्म कैसे उत्पन्न करे ? गौतम ! प्राणातिपातसे, यावत् मिथ्यादर्शनशल्य अर्थात् अठारह पापोसे कर्कश वेदनीयकर्म उपार्जन करे । हे भगवन् ! नारकीके जीवोंको कर्कश वेदनीय कर्म उत्पन्न होते हैं ? । होते हैं, यावत् वैमानिक जीवोपर्यन्तको होते हैं ।

हे भगवन् ! जीव अकर्कशवेदनीय कर्म उत्पन्न करते हैं ? करते हैं । हे भगवन् ! अकर्कशवेदनीय कर्म कैसे उत्पन्न होते हैं ?, हे गौतम ! प्राणातिपातविरमणसे, यावत् परिग्रह विरमणसे, और क्रोधके त्यागसे, यावत् मिथ्यादर्शन शल्यके त्यागसे जीवोंको अकर्कश वेदनीयकर्म उत्पन्न होते हैं ? हे भगवन् ! नारकीके जीवोंको अकर्कशवेदनीय कर्म उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, अर्थात् नहीं होते है, यावत् वैमानिक पर्यन्त । लेकिन मनुष्योंको तो, जैसे जीवको कहा, वैसे समझना । अर्थात् मनुष्योको यह कर्म उपार्जन होते हैं ॥

हे भगवन् ! जीवोंको शातावेदनीय कर्म उत्पन्न होते हैं ? होते हैं । हे भगवन् ! किस प्रकारसे शातावेदनीयकर्म उत्पन्न होते

हैं? हे गौतम! प्राणकी अनुकंपासे, भूतकी अनुकंपासे, जीवकी अनु-कंपासे, सत्त्वकी अनुकंपासे, और बहुत प्राणीभूत–जीव–सत्त्वोंको दुःखके नहीं देनेसे, दीनपनेके नहीं करानेसे, शोकके नहीं करा-नेसे, अश्रुआदिके नहीं करानेसे, यष्ट्यादिके ताडनके अभावसे, श रीरके तप्त करनेके अभावसे, जीव शातावेदनीय कर्म उपार्जन करते हैं। इस प्रकार नारकीके जीवोसे लेकर वैमानिक पर्यन्त समझ लेना ॥

हे भगवन्! जीवोको अशातावेदनीय कर्म उत्पन्न होते है? होते हैं। हे भगवन्! जीवोंको अशातावेदनीय कर्म कैसे उत्पन्न होते हैं?, हे गौतम! परको दुःखदेनेसे, परको दीनपना करानेसे, परको शोक करानेसे, अश्रुआदिके गिरवानेसे, यष्ट्यादिसे ताडन करनेसे, और शरीरको तप्त करनेसे तथा बहुत प्राणियोंको पीडन करनेसे, यावत् शरीरको तप्त करनेसे जीव अशातावेदनीय कर्मको उपार्जन करता है। इस प्रकार नारकी के जीवोंसे लेकर वैमा-निक पर्यन्त समझ लेना ॥

अब विचारनेकी बात यह है कि–उपर्युक्त पाठमें चार प्रकारके क-र्मोंके उत्पन्न होनेमें, कारण भी भिन्न भिन्न ही दिखलाए हैं। इससे स्पष्ट होता है कि–" जीवोंको नहीं मारना, ' इसीका नाम ' अ-नुकंपा ' नहीं है किन्तु एक जीवोंकी रक्षा करना–दुःखोसे मुक्त करना, इसीको भी कहते हैं। और इससे भी अनुकंपा करनी, यह जाहिर होता है।

अब, आगमोंके प्रमाणोंसे अनुकंपाका विशेष स्पष्टीकरण कर-नेकी आवश्यकता नहीं है, तो भी यह कहना अनुचित न होगा कि–' निरनुकपा ' यह अनार्य के लक्षणोंमे दिखलाई हुई है। जैसे सूयगडांगसूत्रके प्रथम श्रुतस्कंधके पृ० २६२ में अनार्यके लक्षण दिखलाते हुए कहा है कि:—

" पावा य चंडदंडा अणारिया णिग्घिणा णिरणुकंपा "

इससे भी सिद्ध हुआ कि–आर्यपुरुष, अनुकंपासे रहित नहीं हो सकते । कहिये, इससे बढकर और क्या कहा जा सकता है ?।

हम दावेके साथ कह सकते है कि–चाहे पैंतालीस आगमोंको देख लीजिये, चाहे बत्तीस, लेकिन किसी स्थानमें अनुकंपाका निषेध नहीं देखनेमें आवेगा ।

इन आगमोंको ही क्यों ? हम पहिले कह आये हैं, उसी तरह संसारके समस्त धर्मके, धर्म ग्रन्थोंको देख लीजिये, किसी-मेंसे यह नहीं पाया जायगा कि–'जीवोंकी रक्षा नहीं करनी चाहिये–' 'जीवों पर दया नहीं करनी चाहिये'–'जीवोंको नहीं बचाना चाहिये' । यदि ऐसे ही सिद्धान्त संसारमें प्रचलित होवे, आज संसारमें मनुष्य, मनुष्य ही नहीं कहे जाते, किन्तु उनका कुछ और ही नाम होता ।

हम कहते हैं कि–सूत्र--सिद्धान्तोंके उन गूढ रहस्योंको जाने दीजिये, हमारे तत्त्ववेत्ताओंने–ऋषि–महर्षियोंने, उन रहस्योंका भी मक्खन निकालकर, हमारे सामने जो सुभाषित रक्खे हैं, उन्हींपर हम ख्याल करे, तो हमें मालूम हो सकता है कि–अनु-कंपा क्या चीज हैं ? वह हमें करने लायक है या नहीं ?।

देखिये, एक जगह कहा हैः–

" विद्या विवादाय धनं मदाय,
शक्तिः परेषां परिपीडनाय ।
खलस्य साधोर्विपरीतवृत्तिः,
ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय " ॥ १ ॥

अर्थात्–दुर्जनकी विद्या विवादके लिये, धन मदके लिये, और शक्ति दुसरोंके दुःख देनेके लिये होती है। किन्तु, साधु पुरुषकी इससे विपरीतवृत्ति होती है। अर्थात् साधु–सज्जनकी विद्या ज्ञानके लिये, धन दानके लिये और शक्ति दूसरोंकी रक्षाके लिये होती है।

कैसा उत्तम सुभाषित! यदि इस एक ही सुभाषित पर खयाल रक्खा जाय, तो मनुष्योंको मालूम हो सकता है कि–दान करना और जीवोंकी रक्षा करना, ये दोनों मनुष्योंके परम कर्तव्य ही हैं।

शास्त्रकारोंने तो आगे बढ़करके यहाँतक कहा है कि:–

"वर्षन् क्षाराणवेऽप्यब्दो मुक्तात्वं क्वापि जायते।
सर्वेषां ददतो दातुः पात्रयोगोऽपि संभवेत्" ॥ १ ॥

अर्थात्–जो मनुष्य हमेशां देता ही रहता है–दान करता ही रहता है, उसको कभी न कभी पात्रका योग मिल ही जाता है, जैसे क्षारसमुद्रमे भी वर्षते हुए मेघका जल, कभी न कभी मोती पनेको भी प्राप्त कर लेता है।

इस लिये मनुष्योंको हमेशां दान देते ही रहना चाहिये। यों नहीं समझना चाहिये कि–यह तो असंयमी है–यह तो अव्रती है, इसको कैया कर दिया जाय?। नहीं, व्रती–अव्रतीका, पात्र–अपात्रका विचार मोक्षार्थदानमें करनेका है, अनुकंपा दानमें नहीं। इसके लिये कहा भी है कि:–

"इयं मोक्षफले दाने पात्रापात्रविचारणा।
दयादानं तु सर्वज्ञैर्न क्वापि प्रतिषिध्यते" ॥ १ ॥

अर्थात्-यह पात्रापात्रका विचार मोक्षफल संबंधी दानमें करनेका है, परन्तु दया--दान (अनुकंपा) का तो सर्वज्ञप्रभुने कहीं

भी निषेध नहीं किया। क्योंकि—" दीनाय देवदूष्यार्धं यथाऽदात् कृपया प्रभुः " स्वयं परमात्माने भी अपना आधा-देवदुष्यवस्त्र, दीन ऐसे ब्राह्मणको अनुकंपासे दिया ही है। फिर इसका निषेध करना-इसमें प्रवृत्ति न करना, यह बडी भारी अज्ञानताका कही जा सकती है।

अगर बुद्धिमत्तासे विचार किया जाय, तो मालूम हो सकता है कि-धर्मके शोभित होनेमें करुणा—अनुकंपा ही एक कारण है। बल्कि योंही क्यो न कहा जाय कि धर्मका मूल ही दया--अनुकपा-करुणा है। सिवाय अनुकपाके सिवाय दयाके धर्मरूपी वृक्ष कभी खडा रह ही नहीं सकता है। इसी लिये एक कविने भी कहा है:-

" लक्ष्म्या गार्हस्थ्यमक्ष्णा मुखममृतरुचिः श्यामयाऽम्भोरुहाक्षी
भर्त्रा न्यायेन राज्यं वितरणकलया श्रीर्नृपो विक्रमेण।
नीरोगत्वेन कायः कुलममलतया निर्मदत्वेन विद्या
निर्दम्भत्वेन मैत्री किमपि करुणया भाति धर्मोऽन्यथा न "॥१॥

अर्थात्—गृहस्थीपना लक्ष्मीसे, मुख आंखसे, चन्द्र रात्रीसे, स्त्री पतिसे, राज्य न्यायसे, लक्ष्मी दान करनेसे, राजा विक्रमसे, शरीर निरोगत्वसे, कुल पवित्रतासे, विद्या निरभिमानतासे, मैत्री निष्कपटभावसे और धर्म करुणासे शोभित होता है। अन्यथा नहीं।

कहाँ तक कहा जाय ? दया और दानकी महिमा शास्त्रोंमें स्थान स्थानमें पाई जाती है। बल्कि योंही अगर कह दें कि-'संसारके समस्त शास्त्रोंका 'दान और दया करना' यही सार है,' तो इसमें जरा सी भी अत्युक्ति नहीं कही जा सकती

अतएव, अन्तमे निम्नलिखित भावनाके साथ 'हितशिक्षा' की पूर्णाहुति की जाती है कि:—

" इस श्रेयस्कर उद्यम द्वारा, पुण्य मुझे उपजा है जो,
आशा करता हूँ मैं, उससे मिथ्याविभ्रमका लय हो।
और इसीसे भविजन पाओ शिवपदके अविचल पथको,
रागद्वेष-विभाव-तिमिरसे कोई भी अन्धा न बनो " ॥१॥

" देवें सर्व मनुष्य, दान दिलसे दुःखी तथा दीनको,
पीडा-विह्वलका प्रपालन करें, रक्खे दया भावको " ।
आशीर्वाद यही प्रदान करके, सद्भावनासे भरे,
'शिक्षा' पुस्तकका समापन यही विद्या विनोदी करे ॥२॥

भव्यानामुपकाराय हितशिक्षामिमां व्यधात् ।
धर्माचार्यपदोपासी श्रीविद्याविजयो मुनिः ॥३॥

समाप्त.

|| अर्हम् ||

|| परमगुरुश्रीविजयधर्मसूरिभ्यो नमः ||

शिक्षा–शतक.

१

मित्रो! देखो एक जगत्में ऐसा पंथ निराला है,
  माने नहि कुछ धर्म–कर्म, मन मानी मौज उडाता है।
चेतन–जडका भेद न जाने, शास्त्र कुशस्त्र बनाया है,
  ऐसे तेरापंथ मजबने जगमें गजब मचाया है ||

२

सुनो सर्व सिद्धान्त इसीका, सार सार दिखलाता हूँ,
  नहीं लेखिनी माने तो भी, हृदय कठोर बनाता हूँ।
दया दानका मूल उखाड़ा, प्रतिमा पत्थर माना है,
  ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ||

३

जो अनुकंपा मानी जगने, उससे भी मुख मोडा है,
  सावद्य–निरवद्य भेद दिखाकर, रास[1] भयंकर जोड़ा है।

---

१ तेरापंथ मतके उत्पादक भीखमजीने, 'अनुकंपा रास' बनाया है, जिसमें निर्दयताकी ये सब बातें लिखी हुई हैं।

सूत्रोंमें नहि भेद दिखाया, अपने आप जमाया है,
ऐसे तेरापंथ मजवने, जगमें गजव मचाया है ॥

४

जो बिल्ली चूहेको पकडे, उसे नहीं छोड़ाता है,
बिल्लीको उसमें दुख माने, निर्दयभाव वढ़ाता है ।
नहीं समझते ही 'दुख देना', किसका नाम कथाया है ?
ऐसे तेरापंथ मजवने, जगमें गजव मचाया है ।

५

"पानीके विण तड़फ रहा जन, आकुल-व्याकुल होता हो,
हाय हायरे! वाप मुआ! वोले मुझको कोई जल दो ।
नहि देना उसको भी पानी," ऐसा मत मन-माना है,
ऐसे तेरापंथ मजवने, जगमें गजव मचाया है ॥

६

"पानी देकर उसे वचावें, तो पापोंको सेवेगा,
अन्न खायगा, जल पीएगा, फिर विषयोंको सेवेगा ।
वे सव हमको पाप लगेंगे, हमने क्योंकि वचाया है,
ऐसे तेरापंथ मजवने, जगमें गजव मचाया है ॥

७

"जिस वाडेमें गौएं रहतीं, उस वाडेमें आग लगी,
मत खोलो फाटक उसकी तुम, कारण गौएं जीएंगी ।
जीकर वे तो पाप करेंगी," यह उपदेश सुनाया है,
ऐसे तेरापंथ मजवने, जगमें गजव मचाया है ॥

८

" किसी गृहस्थका घर जलता है, उसमें वहुत मनुष्य भरे,
किलविल किलविल वे करते हैं, हाय मरे! रे हाय मरे।
पर मत खोलो किंवाड उसका," ऐसा धर्म मनाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजव मचाया है ॥

९

" गाडा नीचे बच्चा आवे, उसको भी न उठाओ कोई,
मरता हो तो मरने दो, चिंता न करो जीनेकी कोई।
जीना-मरना कभी न चाहो " यह सिद्धान्त दिखाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजव मचाया है ॥

१०

" साधु-संतको किसी दुष्टने आकर फांसी दीनी है,
भोगन दो उसको वह अपनी, जैसी करणी कीनी है।
मत खोलो फांसी उसकी तुम, " ऐसा ज्ञान कराया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजव मचाया है ॥

११

" जाडेसे मरते को मत दो, कपडेका टुकडा तुम एक, "
" भूखोंको मत अन्न खिलाओ, ऐसी मनमें रक्खो टेक "!
ऐसी दया प्ररूपी जिसने, क्या क्या नहि दिखलाया है ?
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजव मचाया है ॥

१२

" कोई मारे जीव मार्गमें, पैसा दे मत छूडाओ, "

" सबल जीव दुर्बलको मारे, धर्म छुडाये मत मानो । "
" लाय बुझाओ–कसाइ मारो, दोनों सम समझाया है, "
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

१३

" विद्याशाला–दानभवन–हॉस्पिटल और पानीकी पो,
ऐसे कार्योंके करनेसे, धर्म–पंथको बैठे खो । "
यही बोध है इसी पंथका, क्या ही तत्त्व निकाला है ?,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

१४

" जीवोंका जीना नहि चाहें " ऐसी डींग अडाते हैं,
फिर भी मक्खी गिरे दालमें, तुरत निकाल बचाते हैं ।
वायुकायके जीव बचानेको पाटा बंधाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

१५

" जीवोंका हम तरना चाहें " इसी भूतके कारणसे,
मरतेको सुखसे वे देखें, क्या है ऐसे तारणसे ? ।
आया इसका यही नतीजा, दया–दान उठवाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

१६

यह तरना वे भी तो चाहें:–कसाइ नाम धराते हैं,
ईश्वरका ले नाम, पशुव्रजका जो जभे कराते हैं ।
रहा फरक क्या इन दोनोंमें ? नहीं समझमें आया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

१७

करूँ कहाँ तक वर्णन इसका ? बहुत विषय कहनेका है,
दया-वृक्षको तोड दिया, बी बोया निर्दयताका है।
आर्द्रभावको दूर किया, निज मन पाषाण बनाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

१८

दया दयाका नाम पुकारें, दया नहीं जानें लवलेश,
'दुःखीको दुखसे छोडाना,' कही दया यह ही परमेश।
इसी दयाको, पर, नहीं जानें, मारें मन जो आया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

१९

"जीव मारनेसे लगता है, पाप एक, मारे उसको,
पाप अठारों लगे उसीको, मरतेको परिपाले जो।"
यह सिद्धान्त खास है इसका, इसमें सब कुछ आया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

२०

"जो कुछ देना सो हमको दो, मत दो और किसीको कुछ,
नहीं पात्र हैं और जगत्में, हमहीको समझो सब कुछ।"
साध्वाभासोंकी यह शिक्षा, नवीन पंथ चलाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

२१

अब कुछ सुनो सूत्रकी बातें, जो इसने पलटाई हैं,
नहीं समझकर अर्थ इन्हींके, कुयुक्तियाँ दिखलाई हैं।

जहाँ चली नहि एक, वहाँ तव 'प्रभु चूके' दिखलाया है,
ऐसे तेरापंथ मजवने, जगमें गजब मचाया है ॥

२२

रयणादेवीके रोनेसे हुआ **शोक** उस जिनरिखको,
ज्ञाताके नववें अध्ययनमें '**करुण**' शब्दको तुम देखो।
'करुण' शब्दको 'करुणा' कहकर झूठा अर्थ लगाया है,
ऐसे तेरापंथ मजवने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

२३

दिया दान वार्षिक, प्रभुने जब, अनुकंपाके आशयसे,
बार वर्षका कष्ट बतावें, प्रभुको, दारुण विभ्रमसे।
दान दिया सब अर्हन्तोंने, औरोंको न कहाया है,
ऐसे तेरापंथ मजवने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

२४

प्रज्ञप्त्यागम पनरशतकमें, मंखलिपुत्र बचाया है,
'अनुकंपा' शब्दके देखते, 'प्रभुचूका' दर्शाया है।
चार ज्ञानके स्वामी प्रभुपर, यही कलंक लगाया है,
ऐसे तेरापंथ मजवने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

२५

निर्दोषी प्रभु थे, अप्रमादी, कभी न चूके संयममें,
श्रीआचारे यही बताया, देखो नववें अध्ययनमें।

---

१ पृष्ठ ९५८-९५९। २ भगवतीसूत्र। ३ पृ० १२१७-१२१८।
४ आचारांगसत्र। ५ पृष्ठ १५०-१५२।

'प्रभु चूके' का पाठ नहीं, फिर अपने आप दिखाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

२६

अरणकका दृष्टान्त बताकर, कहें:—' न की करुणा इसने, '
पर करुणाका काम वहाँ क्या, सुरलीला जानी इसने ।
' नहि छोड़ेंगे धर्म हमारा ' यह अरणक फरमाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

२७

' नहीं करेगा हर्ज हमारा ' यही बात इसके मनकी,
फिर यह क्योंकर करे प्रार्थना, बनियोंके संरक्षणकी ? ।
ज्ञातसूत्रमें स्पष्ट बात है, फिर भी झूठ चलाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

२८

मिथिलापति नमिराय, ' ऋषीश्वर ' होकर चलदें जंगलमें,
रुदनकरें सब लोग नगरके, अपने अपने मंदिरमें ।
नहीं मोह उन पर ऋषिजीको, यही सत्य फरमाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

२९

गया इन्द्र, हो विप्र, वहाँपर, मोह-परीक्षा करनेको,
वैक्रियद्वारा पुरी जलाकर, पूछे ' क्यों न इसे देखो ? ' ।
इसको भी ' करुणा ' बतलाकर, दया-धर्म उठवाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

---

१ पृ०७६५ ।

३०

प्रतिमाके साधन करनेको, पहुँचा मॅरघट[1] गजसुकुमाल,
सोमलने आकर इसके सिर, बांधी है मिट्टीकी पाल ।
उसमें भरे ज्वलित अंगारे, यही सूत्रमें आया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

३१

कहें, 'न क्यों अनुकंपा की प्रभुने,' यह झूठ बताते हैं,
भाविभावको जानें प्रभुजी, नहीं प्रयत्न उठाते हैं ।
इसी निमित्तसे कर्मनाश, प्रभुने इसका समझाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

३२

"महावीरको हुए अनेकों कष्ट, देव–मनु–तिर्यक्‌से,
की नहि रक्षा क्यों सुरपतिने अनुकंपाके कारणसे ?"
सार इसीका नहीं समझते, देखो यह बतलाया है:–
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

३३

आया सुरपति सेवा करने, जहाँ जिनेन्द्र विराजे हैं,
पर, प्रभुने फरमाया ऐसे "जिननिरपेक्षक होते हैं ।
करें कर्मक्षय स्वकीय बलसे" योगशास्त्रमें[2] आया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

३४

चेडा-कोणिक समरसमयमें, भी है सार समझनेका,

---

१ स्मशान । २ पृ० १० ।

"नहीं किया क्यों प्रयतन प्रभुने, जीवोंके परिपालनका" ?।
भाविभावको जानें जिससे, नहीं प्रयत्न कराया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमे ढोंग मचाया है ॥

(३५)

" चुलणिपियाके तीन पुत्रको मारे पौषधशालामें,
पर, नहि की अनुकंपा उनपर, रहा धर्मकी दृढतामें"।
प्रसंग था वह मोहरायका, उसको और बताया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

(३६)

माताके आनेपर इसने, कोलाहलको बहुत किया,
रजनीका था समय, अतः व्रतभंग इसे तो कही दिया।
सूत्र उपासकमें यह आया, दया-निषेध न आया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

(३७)

" मच्छ गलागल नितप्रति होती, सारे द्वीप समुद्रोंमें,
इनको क्यों न बचावें प्रभुजी, रहे इन्द्र जब आज्ञामें ?।"
भाविभावको जानें जिनवर, जैसा होनेवाला है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

(३८)

कइ अनुकंपा 'जिनआज्ञामें' कइको 'आज्ञाभिन्न' गिनें,
नहीं भेद दिखलाए कहिंपर, फिरभी अपने आप गिनें।

---

१ पृ० १४०।

मनमाने ये भेद दिखाकर, मूलतत्त्व उठवाया है,
ऐसे तेरापंथ मजवनें, जगमें ढोंग मचाया है ॥

३९

" नेमनाथने पशुओंको रक्षा की है भावी दुखसे, "
" धर्मरुचीने जीव बचाये, भाविकालमें मरनेसे । "
" मेघकुमरने ससलेको भी इसी प्रकार रखाया है, "
ऐसे तेरापंथ मजवने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

४०

वे अनुकंपा जिन आज्ञामें, इनको आज्ञा रहित गिनेः—
" हरिकेशी पर भक्ति जगाकर, यक्ष, शरीर प्रवेश करे । "
" धारिणिने अनुकंपा लाकर इच्छित भोजन खाया है, "
ऐसे तेरापंथ मजवने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

४१

" हरिणिगमेषी देव, दयासे षट् पुत्रोंको लाया है, "
" अनुकंपासे ही जिनवरने, मंखलिपुत्र[1] बचाया है । "
" हरिका ईंट उठाना, " " सुरने जलधरको वरसाया है "
ऐसे तेरापंथ मजवने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

४२

क्या अनुकंपा हो सकती है, प्रभु आज्ञासे रहित कभी ?
दुःखनाशकी इच्छा तो रखते हैं, मानवमात्र सभी ।
फिर भी इसको नहीं मानते, यही इन्होंकी माया है,
ऐसे तेरापंथ मजवने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

---

१ गोशाला.

(४३)

" अव्रतिजीवन नहीं चाहना ' यह सूत्रोंमें आया है,
नहीं समझ कर अर्थ इसीका, इसको यों पलटाया है–
" अव्रति जीवोंका जीना नहि चाहो, यह बतलाया है "
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

(४४)

ऐसा झूठा अर्थ समझकर, दया हृदयसे खो डाली,
दान–पुण्य शुभकरणी अपने ही हाथोंसे धो डाली ।
समकितको खो बैठ हृदयसे, जो मिथ्यात्व बसाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

४५

पार्श्वनाथने सांप बचाया, शान्तिनाथने कबुतरको,
नेमनाथने पशु बचवाये, देखो उन अधिकारोंको ।
नहीं व्रतीथे, फिर भी उनका, क्यों रक्षण करवाया है ?
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

४६

शास्त्रोंमें तो यही बताया, श्रावक यह कहलाता है:–
" सात क्षेत्रोंमें भक्ति–प्रेमसे धनका व्यय जो करता है ।
दीन दुखीमें धनका व्यय भी जिसने नित्य कराया है, "
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

४७

फिर भी इसको नहीं मानकर, दान–पुण्य भगवाया है,

श्रावक-श्रावकको न खिलावे, इसको धर्म वताया है।
" दीन-दुखीको कुछभी नहि दे, यह श्रावक कहलाया है, "
ऐसे तेरापंथ मजवने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

४८

एकेन्द्रियादि भेद दिखाये जीवोंके, जो सूत्रोंमें,
पुण्य-पाप भी भिन्न वताये, जीने-मरने दोनोंमें।
नहीं मानकर इन भेदोंको, सवको सम समझाया है,
ऐसे तेरापंथ मजवने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

४९

नहीं समझमें आता मुझको, क्यों वे रोटी खाते हैं ?
इसके वदले वडे अजोंको[1], क्यों वे नहीं उडाते हैं ?।
पाप लगेंगे दोनोंमें सम, कारण, यही मनाया है,
ऐसे तेरापंथ मजवने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

५०

' जीव मारकर जीव न रखना, ' यह जो वात वनाते हैं,
आवे यद्यपि सांढ सामने, कैसे भागे जाते हैं ?।
'क्या भगनेमें जीव न मरते ?, ' फिर भी झूठ वताया है,
ऐसे तेरापंथ मजवने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

५१

दया दयाका नाम पुकारें, दया किसीकी नानी है ?
दया रही अंतर ही घटमें नहीं, वडा वह पापी है, ।

---

१ वकरोंको ।

इसी दयाका मूल उठाकर, क्रूरकर्म फैलाया है,
ऐसे तेरापंथ मजवनें, जगमें ढोंग मचाया है ॥

५२

दया दानका मूल उठाया, इतना भी तो नहीं किया,
अपनी पूजा ही के कारण, प्रभुपूजाको उठा दिया ।
अपनी प्रतिमाको मानें, जिन-प्रतिमाको न मनाया है,
ऐसे तेरापंथ मजवने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

५३

सूत्रोंमें तो ठौर ठौर अधिकार जिन प्रतिमाका है,
पाठ छिपाकर इसका, इसने कृत्य किया चोरीका है ।
प्रभुवाणीकी चोरी करके, साहूकार वनाया है,
ऐसे देखो अजव मजवने, जगमें गजव मचाया है ॥

५४

जिनप्रतिमा–जिनवाणी, ये दोनोंका हमें सहारा है,
मानें इनमें एक, उसे क्या कहना ? यही विचारा है:–
'वाप विनाका पुत्र समझ लो' यही उचित समझाया है,
ऐसे देखो अजव मजवने, जगमें गजव मचाया है ॥

५५

जिन प्रतिमाके दर्शनसे, दर्शन ही निर्मल होता है,
'दर्शन व्रतका मूल कहावे,' जिन आगम यह कहता है ।
इसी मूलका मूल उखाडा, क्या ही जग भरमाया है ?,
ऐसे देखो अजव मजवने, जगमें गजव मचाया है ॥

५६

भेजी प्रतिमा अभयकुंवरने, आर्द्रकुमरके पास सही,
देख, हुआ उस समय उसीको 'जातिस्मरण' ज्ञान वहीं।
सुयगडांगके छठे अध्ययनमें, यह अधिकार बताया है,
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

५७

कहें कुपंथी 'भेजा ओघा,' नहीं तत्त्वको सोचा है,
ओघेको कहता आभूषण क्या? उसने जो सोचा है।
इसी कल्पना हीके कारण, नहीं तत्त्वको पाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

५८

दोवेइने जिन प्रतिमा पूजी, ज्ञाता यह फरमाता है,
स्पष्ट पाठ मिलने पर, क्यों यह मूढमती शरमाता है ?।
प्रभुपूजा–प्रभुदर्शनके विण, यों ही जन्म गमाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

५९

देव–देवियोंको मानें, फिर जाकर नाक घिसाते हैं,
प्रभुप्रतिमाके आगे जानेको, क्यों ये हिचकाते हैं ?।
नहीं शरम आवे इनको, यह नवीन पंथ चलाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

६०

नाम 'अहिंसा' के दिखलाए, उसमें 'पूजा' दिखलाई,

१ द्वितीय श्रुतस्कंधमें। २ द्रौपदी। ३ पृ० १२५५।

प्रश्नव्याकरणसूत्र कहे, यह आंख खोल देखो भाई।
पकडा सो पकडा यह रक्खे, छोडे नहि पकडाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

६१

समकित धारी सूरयाभने प्रभुप्रतिमा पूजी देखो,
इसी सूत्र रायपसेणीमें नाटक भी इसका देखो।
स्पष्ट पाठ होनेपर, कैसा फिर, इसको पलटाया है:—
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

६२

" नाटककी जब आज्ञा मांगी, वहाँ वीरप्रभु मौन रहे, "
कहें कुपंथी ' धर्म कहाता, क्यों आज्ञा प्रभु नहि देते ?'
समझ नहीं इस न्याय नीतिकी:—'अनिषिद्ध, स्वीकृत होता है'
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

६३

अगर न होती प्रभुकी आज्ञा, जब गौतमने पूछा था,
क्यों करते वर्णन नाटकका ? कहते 'अनुचित ही यह था'।
इन बातोंको नहीं समझकर, ठोके जो मन आया है,
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

६४

जिन प्रतिमाकी सेवा करता साधु, निर्जरा करता है,
ऐसा खुल्लंखुल्ला देखो, प्रश्नव्याकरण कहता है।

---

१ पृ० ३३९। २ पृ० ७५ से। ३ पृ० ४१५।

भाव-भक्तिका पाठ दिखाया, फिर भी मूँह छिपाया है,
ऐसे देखो अजव मजवने, जगमें गजव मचाया है।

६५

जिन प्रतिमाकी पूजा करनेवाला सम्यग्दृष्टी है,
पूजासे जो विमुख रहा नर, वह तो मिथ्यादृष्टी है।
महाकल्पके इसी पाठको, जिसने नहीं मनाया है,
ऐसे देखो अजव मजवने, जगमें गजव मचाया है॥

६६

जव आणंदने व्रत लिये, उस समय प्रतिज्ञा यह की है:-
'अन्य तीर्थके देव न वांदुं' प्रतिमा सिद्ध इसीसे है।
अक्कल नहीं ठिकाने जिसकी, मूढ पंथ भरमाया है,
ऐसे देखो अजव मजवने, जगमें गजव मचाया है॥

६७

जिन प्रतिमाकी तरह साधुकी सेवा करने वालेको,
दीर्घायुष्य शुभ कर्म वंधाते, देखो [1]तीजे ठानेको।
उपमासे प्रतिमाकी पूजा, नहीं हृदयमें लाया है,
ऐसे देखो अजव मजवने, जगमें गजव मचाया है॥

६८

इसी सूत्रमें फिर भी देखो, **ठवणा सत्य** वताया है,
निक्षेपे जो चार वताये, उसमें **ठवणा** आया है।
इन सबको भी नहीं मानकर, कैसा ऐव लगाया है,
ऐसे देखो अजव मजवने, जगमें गजव मचाया है॥

---

१ ठाणांगसूत्र पृ० ११७

६९

उववाइ 'अरिहंत चेइयाणि,' क्या यह पाठ बताता है ?,
अंवडने भी प्रतिमा पूजी, यही सूत्र दिखलाता है ।
अपने घरकी बात न जानें, झूठा ढोंग मचाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

७०

सतर भेदसे जिनप्रतिमाकी, पूजाका अधिकार कहा,
इसी सूत्र रायपसेणीमें, प्रतिमाको 'जिनसदृश' कहा ।
'निःश्रेयस' का फलभी आया, फिर भी हठ पकडाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

७१

आलोयण विधि चली सूत्रमें, इसमें भी यह दर्शाया:–
"साधु, पास प्रभुप्रतिमाके जा, आलोयण ले" यह आया ।
करें अर्थ, इसका क्या वे जो, जिनने मुख बंधाया है ?,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

७२

भरतरायने अष्टापद पर, मणिमय बिंब भराये हैं,
गौतमस्वामी जिनवंदनके हेतु यहाँ पर आये हैं ।
संप्रतिने भी सवाक्रोड जिन बिंबोंको बनवाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

७३

महानिशियमें यही बताया, 'जो जिनबिंब भराता है,

---

१ पृ० २१६–२१७ । २ पृ० १९० ।

श्रावक करणी वही पालकर, स्वर्ग बारवें जाता है'।
इस करणीको नहीं मानकर, समकित बीज जलाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

७४

प्रतिमाका आकार देख कर, और मच्छ भी बूझे हैं,
समकित पाकर जातिस्मरणसे, पूर्वभवोंको पेखे हैं ।
तिसपर मानें नहीं, जिन्होंने सच्चा अर्थ चुराया है,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

७५

अंग पांचवेंमें गणधरने, ब्राह्मी लिपिको वांदी है,
फिर भी प्रतिमाके निंदकने, पूरी निंदा ठोकी है ।
सुनो कुतर्कोंको भी इसके, जिनसे जग भरमाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

७६

कहें कुपंथी, "पत्थरकी गौ क्या हमको पय देती है ?
इसी तरहसे पत्थरकी प्रतिमा न हमें कुछ देती है" ।
कहा खूब, अक्कलका परिचय अपने आप कराया है,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

७७

पत्थरकी गौसे क्या हमको गौका ज्ञान न होता है?
ऐसे ही जिनप्रतिमासे, जिनेका उद्बोधन होता है ।

---

१ भगवतीसूत्र । २ तीर्थंकरका । ३ ज्ञान ।

कहिये, माता-पुत्री-स्त्रीमें क्योंकर भेद मनाया है?
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

७८

नाम मात्रके ही लेनेसे, इष्ट-सिद्धि क्या होती है?
नाम रटो दिनभर लड्डूका भूख नष्ट क्या होती है ?।
नाम-मूर्ति इन दोनोंसे ही कार्यसिद्ध दिखलाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

७९

साधु कदाचित् पघड़ी पहने, क्या वह साधु कहावेगा ?
साधु मानते लोक वेषसे, नहिं तो [1]गेही होवेगा।
नहीं मूर्ति, तो है क्या यह भी ? क्यों कुलको लजवाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

८०

जिनसूत्रोंको 'प्रभुवाणी' कहते हैं, इसको भी देखो,
प्रभुवाणी तो चली गई, अब बनी मूर्ति उसको पेखो।
फिर भी प्रतिमाको नहि मानें, पोलंपोल चलाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

८१

प्रतिमामें यह शक्ति रही है, परिणामों बदलानेकी,
जैसे [2]चित्रित वनिताओंमें, 'इससे न वहाँ रहनेकी।
आज्ञा तीर्थंकरने दी है' यह मनमें न जचाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

---

१ गृहस्थ । २ स्त्रियोंके चित्रोंमें।

८२

अब कुछ सुनो मजेकी वातें, जो है चूरणकी गोली,
देकर, मित्रो ! खतम करुं वस, इतनेमें इसकी होली ।
वेष और आचार इन्होंने, शास्त्रविरुद्ध रखाया है,
देखो ऐसे अजव मजवने, अपना जन्म गमाया है ॥

८३

जैनीका तो नाम धरावें, नहीं जैनका लेश रहा,
आचारोंको छोड़, वेषको तोड़, दैत्यका रूप धरा ।
मैले कपड़े रक्खें, मानो तेली राजा आया है,
देखो ऐसे अजव मजवने, अपना जन्म गमाया है ॥

८३

मुखपर पाटा वांधा, लंवा पूंछ वगलमें मारा है,
कपड़ेकी गाती वांधी, यह देखो भील गँवारा है ।
नहीं वेष मुनियोंका है यह, अपने आप धराया है,
देखो ऐसे अजव मजवने, अपना जन्म गमाया है ॥

८५

शास्त्रोंमें नहि यह फरमाया:–' मुखपर पाटा वांधो तुम ',
साफ साफ तो यही कहा:–' जव वोलो यतना रक्खो तुम । '
कहा इसीमें धर्म [1]वीरने, क्यों इसको न मनाया है ?
देखो ऐसे अजव मजवने, अपना जन्म गमाया है ॥

१ महावीरस्वामीने ।

८६

गौतमस्वामी गये मृगावतीके वहाँ, जब यही कहाः—
'भगवन्! मुखको बांधो' ऐसा श्रीविपाकमें साफ कहा।
बांधो हो, तो क्योंकर कहती? इसमें कुछ न विचारा है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है॥

८७

आवश्यकमें विधि बतलाई, काउस्सगके करनेकी,
मुहपत्ती हाथमें कही है, फिर भी मुखको दे ताली।
दशवैकालिक और अनेकों, सूत्रोंमें बतलाया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है॥

८८

दंडा रखनेका दिखलाया, भगवत्यादि अनेकोंमें,
फिर भी इसको नहीं ग्रहें, करते ऐसे सब बातोंमें।
बात एक भी नहीं रखी, साधूका वेष लजाया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है॥

८९

सब चीजोंको खानेवाले, बनकर बैठे बाबाजी,
'खमा', 'पूज्यपरमेश्वर' में, हैं और बने पूरे काजी।
बासि-विदल और मधु-मक्खन भी, जो आया, सो खाया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है॥

९०

लाला कर, आर्याएं देती हैं, जो हरदम रहती हैं,

१ ९.२२। २ आवश्यकनिर्युक्तिमें, काउस्सगके अधिकारमें। ३ साध्वीएं।

पास इन्हींके बैठ मजेसे भोजनको करवाती हैं।
ललनाओंका ढेर हमेशा, दिनभर पास जमाया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है ॥

९१

एक दिवसके अन्तरसे, उस घरमें भिक्षा जाते हैं,
हलवा–पूरी और रायता, सब कुछ ही ले आते हैं।
आधाकर्मी दोष न देखें, सबको इसने खाया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है ॥

९२

कच्चा पानी पिएं राखका, जो सूत्रोंमें नहीं कहा,
बरतणके धोअणको लेलें, जिसमें हैं उच्छिष्ट भरा।
ऐसे करनेसे अपने पर 'म्लेच्छ' कलंक लगाया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है ॥

९३

अजब बात, रखते ही नहि हैं, रात्रिसमयमें पानीको,
करते क्या होंगे यह सोचो, जब जावें वे जंगलको ?।
अशुची रखनेका तो देखो, दंड निशिथमें आया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है ॥

९४

'रजस्वला' यह धर्म न मानें, मानें फोड़ा फूटा है,
उससे भी भिक्षा मंगावें, सब कुछ इसको छूटा है।
करुं कहाँ तक श्लाघा इसकी? धर्म–कर्म सब खोया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है ॥

---

१ रजस्वलावाली स्त्रीसे।

९५

वाहिर काले, भीतरकाले, काले कृत्य कराते हैं,
कूड़-कपटकी खान समझ लो, आडंवर रखवाते हैं।
सूत्र-अर्थका भेद न जानें, भोला जग भरमाया है,
देखो ऐसे अजव मजवने, अपना जन्म गमाया है॥

९६

सव तीर्थोंको छोड़ जगत्के, आप तीर्थ वन वैठे हैं,
गागा कर गीतोंको दिनभर, मूढोंको वहकाते हैं।
शास्त्रोंकी तो वात न करते, ठोक दिया मन आया है,
देखो ऐसे अजव मजवने, अपना जन्म गमाया है॥

९७

'तीर्थेश्वर' का अर्थ न जानें, तीर्थेश्वर वन वैठे हैं,
'खमा' 'घणी खम्मा' की धुनमें, फूले नहीं समाते हैं।
जा पूछा यदि प्रश्न किसीने, वस, झगडा उठवाया है,
देखो ऐसे अजव मजवने, अपना जन्म गमाया है॥

९८

'देव' गिनें वे भीखमजीको, 'गुरु' मानें कालूजीको,
'धर्म' प्ररूपा भीखमका है, छोड़े प्राक्तन[1] पूज्योंको।
इन्हीं तीन तत्त्वोंको ले कर, धोका पंथ चलाया है,
देखो ऐसे अजव मजवने, अपना जन्म गमाया है॥

९९

'तीर्थंकर' का नाम छुडाकर, 'भीखम' नाम सिखाते हैं,

---

१ प्राचीन-पूर्वके।

'भीभाराजिममाडाका'[1] की माला नित्य फिराते हैं।
इसी तरहसे सबकुछ फेरा, यह पाखंड बढ़ाया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है ॥

१००

'करो कभी मत संगत इसकी,' अन्तिमकी यह शिक्षा है,
'मानो मेरा वचन हृदयसे,' बस, यह मेरी भिक्षा है।
स्नेहिमित्रको शतक सुनाओ, जो इस मतमें चलता है,
सेवो दान–दया–जिनप्रतिमा, जिससे पाप पिगलता है ॥

मुझमें जरा नहि शक्ति है, पद जोड़नेकी भी सही,
भाषा न हिन्दी जानता, फिर और क्या कहना यही ?
तो भी कृपासे धर्मगुरुकी, भाव अंतर जो भरे,
व्यक्त कर, उनको जगत्के सामने विद्याधरे ॥

१ भीखम, भारमल, रायचंद जीतमल, मघराज, माणकचन्द, डालचंद और कालुराम, इन आठोंके आद्यक्षरोंको मिलाकर तेरापंथी लोग माला फिराते हैं॥

तेरापंथ-मतसमीक्षा.

इस पुस्तकमें, तेरापंथ-मतकी उत्पत्ति, तेरापंथियोंके स्थूल स्थूल मन्तव्य, पालीमें तेरापंथियोंके साथ जो चर्चा हुई, उसका सारा हवाल, तेरापंथियोंके पूछे हुए तेईस प्रश्नोंके उत्तर और अन्तमें तेरापंथियोंको पूछे हुए ७५ प्रश्न दिये गये हैं। मूर्त्ति पूजाकी, इस पुस्तकमें, सूत्रोंके पाठोंसे अच्छी तरह सिद्धि की गई है। इस पुस्तकको भी अवश्य मंगवा कर देखिये।

मिलनेका पताः—

श्रीयशोविजय जैन ग्रंथमाला ऑफीस.

खारगेट.

भावनगर—काठियावाड.

शिक्षा—शतक.

यह शतक भी बडा ही मजेदार है। कविता ऐसी तो मधुर और चित्ताकर्षक बनी है कि जिसकी तारीफ हम नहीं कर सकते। तेरापंथियोंकी दया, मूर्तिपूजा और अन्तमें उनके आचारोंकी ऐसी तो फोटू ली गई है, कि जिसको देख, पाठक बहुत ही खुश हो जावेंगे। शीघ्र मंगवा लीजिये।

पता.—

श्रीयशोविजयजैनग्रंथमाला ऑफिस.

खारगेट.

भावनगर—काठियावाड.